हमारे अन्य प्रकाशनः—

विजय किस की ?
आँचल और आँसू
आग
आँसू
बुरदा फरोश
प्रेम पुजारिन
चान्द सितारे
कौन किसी का ?
उस की कहानी
पति-पत्नी-प्रेम
राज कुमारी की प्रेम कहानी
शैतान पुजारी
क्रान्तिकारी रमणी
फाँसी की कोठरी से
पायल
गुनाह
चोट
बड़ों का बचपन
यह राज है हमारा
शाही लकड़हारा
स्त्रियों का राज्य
फूल और कलियाँ
आदर्श सन्तान पालन

सहगल प्रकाशन नं० १८

जीना सीखो

अनुवादक
देसराज तथा गन्धर्व

प्रकाशक

नारायणदत्त सहगल एण्ड सन्ज़
चौक फतहपुरी, देहली ६

विषय-सूची

पाठकों से दो बातें

संसार में कौन ऐसा व्यक्ति है जो नहीं चाहता कि उसका जीवन सुखी और सम्पन्न हो और उसको सन्मान और आदर मिले ? और कौन है जो इसके लिए प्रयत्न नहीं करता ? इसके बावजूद हम देखते हैं कि लोग प्राय: संसार को दुखों का घर कहते हैं। आस पास के वातावरण से असंतुष्ट रहते हैं। अपने सम्पर्क में आने वाले व्यक्तियों के विरुद्ध सदा शिकायत करते रहते हैं। घर गृहस्थी या सभा समाज में कहीं उनको रस या आनन्द दिखाई नहीं देता। वह सर्वत्र कटुता और विष फैला हुआ पाते हैं और दुखित होकर क्रंदन करते हैं। ऐसे ही लोगों के कारण संसार रूपी स्थूल सत्य को कई बार असार, मिथ्या और माया जाल तक कह दिया जाता है। जीवन के प्रति इस प्रकार के निराशा, उदासीनता और पराजयपूर्ण दृष्टि कोण की चरम सीमा तब होती है जब कोई मनुष्य संसार की कर्मभूमि से निराश होकर इससे मुख मोड़ लेता है और इससे दूर भागने का प्रयत्न करता है। मानवता और जीवन से दूर पर्वतकंद्राओं में मृत्यु समान शान्ति की गोदी में आश्रय लेना चाहता है।

मनुष्य समाज में फैली हुई इस निराशा और उदासीनता के अनेक कारण हैं। समाज का ढांचा पुराना और बोदा हो चुका है इसको बदलने की आवश्यकता है। परन्तु प्रश्न होता है कि जब तक नवीन ढांचा तैय्यार नहीं होता, क्या हम इसी प्रकार दुख और कलह से परिपूर्ण जीवन व्यतीत करेंगे ?

यदि हम अपनी बहुत सी असफलताओं और कठिनाईयों पर

दृष्टिपात करें तो देखेंगे कि बहुत सी समस्याएं जो विकट मालूम होती हैं तनिक कौशल बरतने से हल हो सकती हैं?

मनोविज्ञान शास्त्र के विकास ने यह प्रमाणित कर दिखाया है कि मानव मन में अद्भुत शक्तियां हैं। उनको पहचानने और उचित ढंग से प्रयोग में लाने की आवश्यकता है। जीवन में सुख और शान्ति की प्रिय सुगन्ध का संचार हो सकता है।

हमें भी अपने जीवन में अपने काम के सिलसिले में अनेक स्थानों को देखने का अवसर मिला और अनेक प्रकार के लोगों से भेंट हुई। इसके अतिरिक्त लोगों के निजी जीवन को बहुत निकट से देखने का भी अवसर मिला। मानव समस्याओं के प्रति मन का विशेष झुकाव होने के कारण उन में दिलचस्पी ली और उनका गम्भीर अध्ययन किया। इस अध्ययन से हम इस परिणाम पर पहुँचे कि यदि सर्व साधारण के सामने जीवन के कुछ आदर्श और नियम रखे जाएं, साधारण व्यवहार कौशल की बातें यदि लोगों को समझा दी जाएं तो बहुत से कष्ट और बहुत सा कलह जीवन से दूर रखा जा सकता है। इस से व्यक्ति गत जीवन अनेक अकारण और महत्त्व हीन चिन्ताओं से मुक्त हो सकता है। समाज की जो अमूल्य शक्तियां इस प्रकार बेकार नष्ट होती हैं वे उन्नति और विकास के पथ पर अग्रसर होने के लिए काम में लाई जा सकती हैं। इसी बात के दृष्टिगत यह पुस्तक तैय्यार की गई है।

किसी भी भाषा के विकास में अनुवाद का बड़ा महत्त्व होता है। इस से अन्य भाषाओं में प्रचलित स्वस्थ विचार अपनी भाषा में समाविष्ट किए जा सकते हैं। हिंदी भाषा आज ऐसी अवस्था में है कि इसे अन्य भाषाओं से बहुत कुछ लेने की आवश्यकता है। हमारा विश्वास है कि प्रस्तुत पुस्तक जो

इकबाल सलमानो को उर्दू कृति 'आदाबे जिंदगी' का अनुवाद है हिंदी साहित्य की एक कमी को पूरा करते हुए एक नवीन क्षेत्र का भी उद्घाटन करेगी। हमें पूर्ण आशा है कि हमारे पाठक हमारे इस प्रयास का स्वागत करके हमारा प्रोत्साहन करेंगे। हम अपने आप को सफल समझेंगे यदि यह पुस्तक कुछ लोगों के जीवन में सुख की चाशनी ला सके।

विनीत
अनुवादक

बातचीत

किसी व्यक्ति की बात-चीत सुनकर आप उसके विचारों तथा उसकी भावनाओं का ही नहीं उसकी मानसिक एवं नैतिक अवस्था का भी अनुमान वैसे ही कर सकते हैं जैसे वर्षा-मापक यन्त्र से वर्षा को मापा जाता है। बात-चीत के मापदण्ड से व्यक्तित्व मापा जा सकता है। वार्तालाप को एक कला माना गया है। जो लोग इस कला से अनभिज्ञ हैं वह न तो अपने व्यक्तित्व को चमका सकते हैं और न ही अपने व्यापार में सफल हो सकते हैं। अच्छे अध्यापक, अच्छे मातापिता, अच्छे मित्र, अच्छे दुकानदार, अच्छे सेवक और अच्छे एजैण्ट वही हैं जो वार्तालाप उत्तम ढग से कर सकते हैं।

अनेक लोगों का जीवन कटुता पूर्ण है और वे सदा शिकायत करते दिखाई देते हैं। बच्चे माता पिता से दुखी हैं तो ग्राहक दुकानदार से नाराज़ हो रहे हैं। अफसर मातहतों से मातहत अफसरों से तंग हैं। और तो और आजकल गुरु और शिष्य में परस्पर वैमनस्य प्राय: देखने में आता है। इस खेंचतान, द्वैत और परस्पर घृणाभाव का कारण मुख्यत: यही है कि लोग वार्तालाप विधि नहीं जानते। हमारे देश के लारी ड्राईवरों; इक्के वालों, कुलियों, मजदूरों, यात्रियों और क्लर्कों की दैनिक बोलचाल हमारी सभ्यता और संस्कृति का मुंह बोलता विज्ञापन है। हमारी मानसिक तथा नैतिक गिरावट, स्वार्थ, निर्दयता और ओछेपन का प्रदर्शन है। सर्व साधारण ही नहीं हमारे नेताओं का बात करने का ढंग भी बड़ा निराशा जनक है। भारत की विभिन्न जातियों के परस्पर द्वेष का दायित्व बहुत हद तक हमारे नेताओं के बात करने

के ढंग पर आता है। जब तक हमारे पथ-दर्शकों की भाषा में माधुर्य, सौंदर्य तथा सहृदयता की चाशनी नहीं आयेगी, हमारा राष्ट्रीय एकीकरण संदिग्ध ही रहेगा।

मानव हृदय की एक बहुत बड़ी आकांक्षा यह होती है कि वह दूसरे हृदयों पर अपना सिक्का जमाए। प्रत्येक व्यक्ति अपने कारोबार, नौकरी और प्रेम में सफलता का इच्छुक है। इस मानव महत्वाकांक्षा ने बहुत से साधू, फकीर, तांत्रिक और ज्योतिषि पैदा कर दिए है। अनेक लोग हाथ देखने वालों के पीछे-पीछे फिरते हैं, भेंट चढ़ाते हैं और ज्योतिषियों से परामर्श लेते है। व्यापारी व्यापर की वृद्धि के लिए, स्त्रियाँ अपने पतियों को काबू मे रखने के लिए और नौकर अपने मालिकों को प्रसन्न रखने के लिए चमत्कार की खोज में धन और समय का अपव्यय करते हैं। काश, यह लोग जान सकते कि चमत्कारी शक्तियां स्वयं उनके अन्दर है। और उनकी सभी शक्तियों में प्रधान बातचीत करने की शक्ति है।

निस्संदेह संसार में बुद्धिमत्ता का भी आदर होता है। सुन्दरता को भी मुंह मांगे दाम मिलते है। धन की चमत्कार शक्ति से भी कोई इन्कार नहीं कर सकता। परन्तु जिस व्यक्ति को बात करने का ढग नहीं आता, जिसके पास कोमल, मधुर, एवं सुसंस्कृत शब्दों का भण्डार नहीं, अनेक गुणों का स्वामी होते हुए भी वह दिलों का स्वामी नही बन सकता। दिल उसी की मुट्ठी मे जा सकते है जिसके शब्दों मं मधुरस हो, जिसकी जिह्वा समय और स्थिति की पहचान कर सके और जिसकी बात चीत में दूसरों के लिए आदर भी हो, प्रशंसा भी, नम्रता भी हो और प्रोत्साहन भी। वही व्यक्ति वस्तुतः जादूगर है। उसके मित्र उससे मिल बैठने के लिए उत्सुक रहते हैं। उसके बीवी बच्चे उसकी बाट जोहते हैं। उसके अतिथि उसके साथ खाना खाकर आत्मिक

आनन्द प्राप्त करते हैं। उसके मातहत उसके इशारों पर चलकर अपने को धन्य मानते हैं। उसकी अनेक कठिनाइयां उसके शब्दों से दूर हो जाती हैं। अनेक बाधाएँ स्वयं ही मार्ग छोड़ देती हैं। बहुत सी आकांक्षाएं स्वयमेव ही पूर्ण हो जाती हैं।

उत्तम वार्तालाप का मुख्य नियम यह है कि अनावश्यक बातों को सर्वथा त्याग दिया जाए। उतनी ही बात की जाए जितनी आप की उद्देश्य-पूर्ति के लिए पर्याप्त हो। कुछ लोग ऐसे होते हैं कि युद्ध की बाते करते-करते घर की बाते करने लगते हैं। घर की बातों में किसी यात्रा का जिक्र छेड़ देते है। एक व्यक्ति के विषय मे बात प्रारम्भ होगी और वे चार व्यक्तियों की कहानियां ले बैठेंगे। इस प्रकार के व्यर्थ वार्तालाप का स्वभाव अधिक बातें करने से बनता है।

वार्तालाप जितना लम्बा होगा, उसका प्रभाव उतना ही कम होगा। शेक्सपीयर का कहना है कि संक्षेप बुद्धिमत्ता की आत्मा है। पोप का यह कथन भी सदा ध्यान मे रखना चाहिए—"शब्द पत्तियों के समान हैं और भाव फल के समान। और जिस वृक्ष पर पत्तियां अधिक हों उसके फल कमजोर होते है।" आवश्यकता से अधिक बाते करने वालों को यह गुमान होने लगता है कि लोग उनकी बातों मे दिलचस्पी लेते हैं। वास्तव में यह दिलचस्पी नहीं होती, दिखावा ही होता है। कोई उन्हे टोकना उचित नहीं समझता। अन्यथा मन ही मन न जाने लोग उन्हें कैसा मूर्ख समझते हों और उन से घृणा करते हों।

बात चीत के दो पहलू हैं—करना और सुनना। अच्छे बोलने वालों की भांति हमारे समाज में अच्छे सुनने वाले भी बहुत कम पाए जाते हैं। सुनने वालों के लिए आवश्यक है कि वह शांति और धैर्य के साथ अपने साथियों की बात सुन सके और खामोश रह कर उसकी ओर ध्यान भी दे सकें। और अपने व्यवहार से बोलने

वाले को यह अनुभव करा सकें कि वह पूरी दिलचस्पी के साथ उसकी बात सुन रहे हैं। कोई व्यक्ति बोल रहा हो तो उस समय तक कोई प्रश्न नहीं करना चाहिए जबतक वह अपनी बात समाप्त न कर ले। कई बार लोग किसी से कुछ प्रश्न करते हैं। वह उसका उत्तर दे ही रहा होता है कि दूसरा प्रश्न दे मारते हैं या बीच ही में बात काट कर अपनी राम कहानी शुरू कर देते हैं। यह अनुचित है। इससे बात करने वाला यह समझता है कि उसकी बात को महत्त्व न दे कर उसका अपमान किया जा रहा है।

किसी भी सुसंस्कृत समाज में अनावश्यक एवं अवांछित प्रश्न करने वाले को आदर की दृष्टि से नहीं देखा जाता। रेल यात्रा के दौरान ऐसे बहुत से लोग मिलते हैं जो व्यर्थ प्रश्नों से अपने साथियों की शांति भंग करने में कोई झिझक नहीं मानते। वे केवल नाम और जाने का स्थान पूछ कर ही संतुष्ट नहीं होते। प्राय: परिवार निवासस्थान तथा कारोबार विषयक प्रश्नों की भी बौछाड़ कर देते हैं। वह इस बात की ओर तनिक ध्यान नहीं देते कि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में कुछ बातें ऐसी होती है जो वह सर्वसाधारण के सामने बताना पसन्द नहीं करता। इसका फल यह होता है कि ऐसे लोग जहां भी जाते हैं अपने विरुद्ध घृणा का भाव उत्पन्न कर लेते हैं।

यदि आप अपने व्यक्तित्व को आकर्षक बनाना चाहते हैं तो यह नियम बना लें कि किसी व्यक्ति के निजी धन्धों के विषय में कोई प्रश्न न करें।

जिस प्रकार यह आवश्यक है कि अन्य व्यक्ति के निजी मामलों की खोज न की जाए, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि बात करने वाला व्यक्ति अनावश्यक ही अपनी बातें न करता रहे। कुछ लोगों का स्वभाव होता है कि जो भी बातें करेंगे, उसमें अवश्य

ही अपने निजी मामलों को घुसेड़ेंगे। किसी बच्चे की बात हो रही हो तो वह अपने बच्चों की दास्तान ले बैठेंगे। किसी मकान का जिक्र हो तो वह अपने मकान का इतिहास कहना प्रारम्भ कर देंगे। किसी के रोग के विषय में बात चल रही हो तो वह अपने या अपने घर के किसी व्यक्ति के रोग को बीच में ले आयेंगे। चीजों की महंगाई और आर्थिक कठिनाइयों की बात ले बैठेंगे। दूसरे लोगों से उनको कोई दिलचस्पी न होगी। यदि किसी उत्सव मे सम्मिलित हुए हों तो उसका जिक्र प्रायः इस ढंग से करेंगे—"मुझे भी निमन्त्रण मिला। जब मैं वहाँ पहुँचा तो अमुक सरदार साहिब या राय बहादुर ने अपने स्थान से उठकर मेरे साथ हाथ मिलाया। अमुक पुलिस अफसर ने मुझे अपने पहलू में कुर्सी पेश की।" इत्यादि! यह बातें करने वाला व्यक्ति यदि झूठ न भी बोलता हो और सब कुछ सत्य ही कह रहा हो तो भी सुननेवालों पर अच्छा प्रभाव नहीं डालता। बुद्धिमान लोगों ने इसे छछोरापन कहा है। आप यदि अपने मित्रों के मन में आदर का स्थान पाना चाहते हैं तो आत्म प्रदर्शन से सदा बचें। संसार मे योग्यतम व्यक्ति वही हुए हैं जिन्होंने आत्म प्रशंसा करने की भूल नहीं की।

उत्तम वार्त्तालाप करने वाला व्यक्ति अपनी किसी भी बात को धार्मिक विश्वास नहीं समझता कि उस में किसी परिवर्तन या संशोधन की गुंजायश ही न हो या उसके विरुद्ध कोई मत या दलील सहन न की जा सके। जो लोग अपनी बातों को इस प्रकार अटल सत्य का दर्जा देने वाले होते है वह अपने आस-पास के वातावरण को मधुर और सरस नहीं बना सकते। और बातों को छोड़िये, यदि किसी धार्मिक विश्वास को भी व्यक्त कर रहे हों तो भी अन्य व्यक्ति के मत और आपत्ति का पूर्णतः आदर करना चाहिए। यदि एक व्यक्ति को अपने दृष्टिकोण के पक्ष में दलीलें पेश करने का अधिकार है तो दूसरे को भी अपने

विचारों को व्यक्त करने का वैसा ही अधिकार है। यदि आप अपनी बातों पर कोई आलोचना अथवा आक्षेप सहन नहीं कर सकते तो समाज आप के ऊपर संकीर्णता का दोष लगाने के लिए विवश है। दूसरों की उचित और स्पष्ट दलीलों के बावजूद अपनी बात पर अड़े रहने से वार्तालाप का रस ही नष्ट नहीं होता, मानव व्यक्तित्व को भी भारी हानि होती है। हट धर्मी उन्हीं लोगों का स्वभाव हो सकती है जिनको हीन भावना का रोग लगा हुआ हो।

वार्तालाप का सब से अनुचित पहलू यह है कि एक ही व्यक्ति बोलता चला जाए और किसी दूसरे को बोलने का अवसर ही न दे। ऐसा व्यक्ति उपरोक्त रूप से अपने साथियों के अपमान का दोषी है। उसकी बातें सुनने वाले स्वभावतः ही बहुत शीघ्र ऊब जाते हैं। प्रतिक्रिया स्वरूप उनके मन में ऐसी हठ पैदा हो जाती है कि उसकी उचित और ठीक बात को भी झूठ और व्यर्थ ही समझते हैं। इस प्रकार स्वयं ही बोलता रहने वाला व्यक्ति दूसरों को कोई लाभ नहीं पहुंचा सकता। और किसी की बात वह सुनता नहीं इसलिए उसके अपने ज्ञान में भी कोई वृद्धि नहीं होती। ऐसे व्यक्ति के जीवन का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाए तो पता लगेगा कि वह बहुत ही स्वार्थी है। स्वार्थ घटिया व्यक्तित्व का चिन्ह है।

वार्तालाप करते समय किसी शब्द या वाक्य को बार बार दुहराने का स्वभाव भी बुरा है। कुछ लोग प्रत्येक वाक्य 'क्या नाम' से प्रारम्भ करते है। कई लोग "मानो" "अर्थात" और "मेरा मतलब यह है" कहने के आदी होते हैं। कुछ लोग पांच मिनट की बात चीत में दस बार शपथ उठाते हैं। या बार बार कोई असभ्य शब्द दुहरायेंगे। वार्तालाप कला की दृष्टि से इन सभी बातों से बचना चाहिए। यह स्वभाव इस बात का

लक्षण है कि बोलने वाले के मस्तिष्क में कोई न्यूनता है जिस की पूर्ति के लिए वह बार बार व्यर्थ शब्दों का सहारा लेने के लिए विवश हो जाता है। एक शब्द को बार २ दुहराने का भाषण पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। श्रोताओं का ध्यान वास्तविक तत्व की ओर से हटकर इस मे लग जाता है। वह बात नहीं समझ पाते।

एक सुनहरी नियम है कि वार्तालाप करते समय आस पास के वातावरण की अवहेलना न की जाए। कई लोग विवाह के अवसर पर शोक की और शोक के अवसर पर विवाह की बातें छेड़ देते है। खाना खा रहे होंगे तो अजीर्ण, कब्ज, जुलाब या किसी और घृणित रोग का जिक्र छेड़ देंगे। किसी दावत में जाएंगे तो अपरिचित अतिथियों से बहस में उलझ जाएंगे।

अमरीका के प्रसिद्ध दार्शनिक डेल कारनेगी ने ऐसे लोगों को चेतावनी देने की दृष्टि से एक दिलचस्प घटना बताई है। उसने लिखा है—सर एस० स्मिथ के सम्मान में एक भोज दिया गया। उसमें मैं भी शामिल हुआ। एक व्यक्ति ने बात चीत करते हुए एक कथन उद्धृत किया और कहा कि यह अंजील में से है। मैं भली भांति जानता था कि वह कथन अंजील का नहीं शेक्सपीयर का है। मैंने उसका विरोध किया तो वह अपनी बात पर अड़ गया। मेरा एक मित्र जिसने अपना जीवन शेक्सपीयर के अध्ययन मे लगाया था, वहीं बैठा था। उसने मेज़ के नीचे से मेरी टांग को हिलाया और कहा, "तुम्हारा विचार गलत है। यह कथन अंजील में से ही है।"

भोज से लौटते हुए मैंने अपने मित्र से कहा "आप तो भली भांति जानते थे कि यह कथन अंजील का नहीं शेक्सपीयर का है। उन्होंने उत्तर दिया "निस्संदेह शेक्सपीयर का ही है। परन्तु हम लोग तो एक हर्ष के अवसर पर एकत्र हुए थे, वाद

विवाद के लिए नहीं। उस व्यक्ति ने हम से राय नहीं पूछी और न ही वह हम से परामर्श लेना चाहता था। फिर उससे अकारण ही बहस क्यों की जाती। झगड़ा बढ़ाने से सदा बचना चाहिए।'

बहस और विवाद का स्वभाव वैसे तो सभी के लिए बुरा है परन्तु व्यापारी लोगों के लिए यह विशेष तौर से हानिकारक है। यूरोप और अमरीका की सभी बड़ी बड़ी फर्में अपने एजैण्टों और कार्य कर्त्ताओं को विशेष तौर से इस बात की शिक्षा देती हैं कि वह ग्राहकों से कभी बहस न करें। भारत के प्रत्येक नगर में ६० प्रतिशत से भी अधिक दुकानदार ऐसे हैं जो साधारण से मतभेद पर भी ग्राहक से वाद विवाद करने को तैय्यार हो जाते हैं। वह समझते हैं कि ग्राहकों को बहस में हराकर उसे अपने माल के गुण समझाए जा सकते हैं। यह बहुत बड़ा भ्रम है। वाद विवाद द्वार ग्राहकों का मन-परिवर्तन लग भग असम्भव है। किसी भी व्यक्ति को बहस में जीतकर अपने से बात करने वाले की सहानुभूति और प्रेम जीतने की आशा नहीं करनी चाहिए। बहस जितनी लम्बी होगी, हठ भी उतनी ही बढ़ेगी।

व्यापारी लोगों को क्या करना चाहिए, यह बात मैं एक उदाहरण द्वारा स्पष्ट करूंगा। मान लीजिए आप फर्नीचर का व्यापार करते हैं। एक व्यक्ति आप की मेजों या कुर्सियों मे दोष निकालता है और कहता है कि अमुक दुकान का माल अधिक अच्छा होता है। इस अवसर पर अच्छा यह है कि उस की बात को झुठलाने का प्रयत्न न करें। अपितु बिना झिझक कह दीजिए, "निस्संदेह उन का माल अच्छा होता है। उनके पास कारीगर बहुत अच्छे हैं।" इन शब्दों से बहस का द्वार बंद हो जाएगा और आप को अवसर मिल जाएगा कि अपने माल के उत्तम गुण उसको बता सकें।

वार्तालाप को रोचक बनाने के लिए इस नियम का भी ध्यान

रखना चाहिये कि आप की बात चीत अन्य व्यक्ति के मानसिक झुकाव, उसकी शिक्षा और उसके स्वभाव के अनुसार हो। काव्य से प्रेम करने वाले व्यक्ति के सामने निरुक्त और दर्शन की बातें करना बड़ी भारी भूल है। अमरीका मे एक व्यक्ति बहुत सर्व प्रिय था। उसका यह नियम था कि जब कभी उसके घर कोई अतिथि आने वाला होता तो वह एक दिन पहले उस विषय का अध्ययन करता जिस में उस अतिथि को दिलचस्पी हो।

यदि आप का साथी आपकी बात चीत में दिलचस्पी प्रगट नहीं करता, उसमें उत्सुकता के चिन्ह दिखाई नहीं देते और वह बे-दिली से 'हूँ हाँ' किए जा रहा है, तो आप को समझना चाहिए कि आप उसके मन की रुचि से अपरिचित हैं। वार्तालाप कला मे प्रवीण व्यक्ति बात चीत के दौरान सदा अन्य व्यक्ति की भावनाओं और उसके संस्कारों का ध्यान रखता है। जैसे ही उसको महसूस होता है कि उसकी किसी बात का उसके साथी के मुख पर बुरा प्रभाव प्रकट हो रहा है तो वह उसी समय बात का विषय बदल देगा।

यदि किसी व्यक्ति को अपने जीवन के सुख और चैन से प्रेम हो तो उसे चाहिए कि झूठ बोलने से बचे और कभी कोई बात बढ़ा चढ़ा कर न कहे। चुग़ली करने, दोष निकालने और आलोचना करने की आदत से जहां गहरे से गहरे रिश्ते टूट जाते हैं, वहां यह आदत सर्व-प्रियता, उन्नति और सफलता के लिये भी विष का काम करती हैं। किसी को भी इस भ्रम में नहीं रहना चाहिये कि वह अपने साथियों की चुग़ली करने, अपने अधिकारियों के दोष निकालने और अपने मातहतों की आलोचना करने के बावजूद भी एक अच्छा मित्र, अच्छा कर्मचारी या एक अच्छा अधिकारी बन सकता है। अनेक बार एक मौन-दृष्टि पात, सहानुभूति पूर्ण व्यवहार, किसी एक के साधारण दोष को छुपाने

या एकाध प्रशंसात्मक वाक्य से ऐसे ऐसे काम निकल सकते हैं जो हज़ार आलोचनाओं और नसीहतों के बावजूद भी नहीं निकल सकते। संसार का इतिहास इस प्रकार की घटनाओं से खाली नहीं जबकि किसी सेना-पति के एकाध शब्द मात्र ने पराजय को विजय बनाकर रख दिया हो।

मैं एक संस्था के प्रधान को जानता हूँ। उसके मातहत लग-भग एक सौ व्यक्ति काम करते हैं। उसने कभी किसी की आलोचना नहीं की। एक बार उसके दफ्तर के नीचे कुछ क्लर्क बड़े जोर जोर से बातें कर रहे थे। उनका ख्याल था कि प्रधान दफ्तर में नहीं है। उसने जब देखा कि शोर समाप्त नहीं होता और उसके काम की हानि हो रही है तो उसने एक चपरासी के हाथ दैनिक समाचार पत्र उनके अध्ययन के लिये भेज दिया। क्लर्कों को पता लग गया कि वह अन्दर है और वे चुप चाप अपने अपने कमरों मे चले गये। उस व्यक्ति के इस प्रशसंनीय एवं बुद्धि मत्ता पूर्ण व्यवहार के विषय मे अधिक लिखने की आवश्यकता नहीं।

ऊपर लिखा जा चुका है कि जब कोई व्यक्ति बोल रहा हो तो उसे बीच में टोकना उचित नहीं। इस नियम को विस्तृत करके ऐसे कहना चाहिए कि जब वह अपनी बात पूरी कर चुके तब भी टोकना उचित नहीं। मान लीजिए, एक व्यक्ति अपने साथियों को कलकत्ते के बारे में बता रहा है। आप के परिचय और ज्ञान के अनुसार चाहे वह गलत ही क्यों न कह रहा हो या उसकी बात अतिशयोक्ति ही क्यः न हो, यह उचित नहीं कि आप उसको झुठलाना शुरु कर दें। स्वभावत. ही उसकी यह इच्छा होगी कि वह अपने आप को सत्य पर प्रमाणित करें। वह अपनी बात पर अड़ जाएगा। इससे सम्भव हो सकता है कि आप दोनों में झगड़ा शुरू हो जाए। यदि किसी मजिस्ट्रेट के सामने कोई

व्यक्ति घटना को ग़लत रूप में प्रस्तुत कर रहा हो और आप की गवाही हो तो आप को पूरा अधिकार है कि उसकी बात को काटें। परन्तु साधारण वार्तालाप मे आप का चुप रहना ही उचित है क्या यह आवश्यक है कि आप अनावश्यक तौर पर ही झगड़े पैदा करके अपने विरोधियों की संख्या बढ़ाएं ?

लार्ड चैस्टर फील्ड ने अपने पुत्र के नाम एक पत्र मे लिखा था "अशिक्षित लोगों का वार्तालाप कोई वार्तालाप नहीं...... बातचीत जारी रखने के लिये उनके पास न तो सामग्री होती है और न ही शब्द। अच्छा वार्तालाप उतना ही रोचक हो सकता है जितना कोई स्वादिष्ट भोज और यह गुण बिना ज्ञान और अनुभव के प्राप्त नहीं किया जा सकता।

उत्तम वार्तालाप करने के इच्छुक व्यक्ति को उक्त लार्ड के ये शब्द सदा ध्यान में रखने चाहिये। अच्छी अच्छी पुस्तकों व पत्र-पत्रिकाओं के अध्ययन से हम अपने ज्ञान, विचार और शब्द भण्डार मे बहुत वृद्धि कर सकते है। जो व्यक्ति अध्ययन नहीं करता वह वार्तालाप कला से भी अनभिज्ञ है। प्रत्येक नवयुवक के पास एक नोटबुक होनी चाहिए। अध्ययन करते समय यदि कोई अच्छा सा वाक्य, कोई उपयोगी बात, कोई पवित्र काव्य-पद अथवा कोई सुन्दर उक्ति दिखाई दे तो तुरन्त नोट कर ले। यही एक ढंग है जिससे आपका वार्तालाप समृद्ध हो सकता है।

अन्त मे वार्तालाप सम्बन्धी कुछ संक्षिप्त किन्तु महत्वपूर्ण संकेत करना आवश्यक प्रतीत होता है। पहली बात तो यह कि बात चीत करते समय स्वर ऊँचा न हो। इससे मनुष्य की जीवन शक्ति (Vitality) नष्ट होती है। स्वर इतना धीमा भी न हो कि सुनने वाले को कठिनाई हो। दूसरे किसी बात पर प्रसन्न होकर अपने साथी के हाथ पर हाथ मारने की आदत को रोकें। तीसरे किसी घर के द्वार के सामने या गली के कोने पर खड़े

होकर अधिक देर तक बातचीत न करें। चौथे किसी राह चलते व्यक्ति की ओर उंगली से संकेत न कीजिये। पांचवें यह कि बोलते समय अपना मुख अपने साथी के इतना निकट न ले जाएं कि उसे आप के श्वास का आना जाना महसूस हो। छठे, वार्तालाप के दौरान थूकना, अंगड़ाई लेना या नाक साफ करना बहुत बुरा है। सातवें जब आपका साथी बोल रहा हो तो उसके मुख पर टिकटिकी बाँध कर न देखें। इससे वह अपनी बात खोल कर बताने से हिचकिचाएगा। आठवें, यह कि बातचीत करते समय माथे पर बल न पड़ने दें।

सबसे अंतिम परन्तु सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि 'पहले तोलो और फिर बोलो।" यह कथन आज भी वैसा ही अनुसरणीय है जैसा पूर्व समय में था।

———

न्याय

न्याय हमारे जीवन की एक उचित मांग है। जब हम देखते हैं कि हमारे मित्र, पड़ोसी, माता पिता, संतान, मातहत और अफसर हमारी यह मांग पूरी नहीं करते तो हम शिकायतें करते हैं, आलोचना करते हैं, डांटते और नाराज होते हैं। मार पीट भी कर लेते हैं। जब कोई बस न चले तो अंदर ही अंदर कुढ़ते और बड़बड़ाते रहते हैं। जीवन में अनेक दुखों, अगणित झगड़ों फसादों और रक्तपात का कारण केवल यह होता है कि एक पक्ष दूसरे के साथ न्याय नहीं करता। वर्तमान विश्व-युद्ध न धर्म के लिये है और न ही राजनैतिक मतभेद के कारण। वरन् यह एक अन्याय की प्रतिक्रिया मात्र है। बहुत गम्भीर और विस्तृत प्रतिक्रिया। यह न्याय की पुकार है, तेज और मार्मिक पुकार!

न्याय क्या है? इसका ठीक उत्तर बहुत कम लोग दे सकते हैं। इसका अर्थ है किसी की क्रिया को उसी की परिस्थिति में खड़े होकर आंकना। अभिप्राय यह कि किसी के साथ ऐसा व्यवहार न करना जो यदि आपके साथ हो तो आप को बुरा लगे—जीवन मे दो ही प्रकार की क्रियाएं होती है। एक वह जो आप दूसरों के प्रति करते है। दूसरे वह जो अन्य लोग आपके प्रति करते हैं। यह दोनों क्रियाएं एक ही कसौटी पर परखी जा सकती हैं। आप के साथ किसी प्रकार का व्यवहार हो या आप किसी के साथ कोई व्यवहार करे तो उसका न्याय-युक्त होना जांचने के लिए आप अपने को उसकी अवस्था में समझ लीजिए। अपने आप से इस प्रकार अन्दाजा कीजिए—

(१) जो व्यवहार मैंने उसके साथ किया है क्या उसके स्थान

पर होता हुआ मैं उसे अच्छा समझता ?

(२) यदि मैं उसके स्थान पर होता तो क्या मैं भी वैसा ही व्यवहार करता जैसा उसने मेरे साथ किया है ?

आत्मा की आवाज इस बात का निर्णय करेगी कि आप का या उसका व्यवहार न्याय-संगत है अथवा नहीं।

बड़ी पुरानी घटना है। मुझे एक किराये के मकान की आवश्यकता थी। मेरे एक मित्र ने किसी मकान के एक भाग के किराए का फैसला करके मुझे सूचित किया। मैंने वह फैसला स्वीकार कर लिया। सायंकाल को थोड़ा सा सामान भी वहां भेज दिया। दूसरे दिन मैं शेष सामान वहां पहुँचाने की तैयारी कर रहा था कि मेरे वही मित्र बड़े रोष और क्रोध से भरे मेरे पास आए और कहने लगे, "मालिक मकान ने हमारा अपमान किया है। वह कहता है कि मकान का कमरा किराए पर नहीं दिया जाएगा।"

"इसका कारण ?" मैंने पूछा।

"वह कहता है कि मेरी पत्नि ने यह सोचे बिना आपके साथ वादा कर लिया कि यदि यह कमरा किराए पर दे दिया गया तो जगह की बहुत तंगी हो जायगी। हमारे अतिथि आएंगे तो उनको कहां ठहराया जायगा। मै कमरा न देने के लिये विवश हूँ।"

मेरे मित्र के मुख का रंग लाल हो रहा था। वह कह रहे थे कि जब लोगों को पता लगेगा कि हमे कमरा देकर वापस ले लिया गया है तो वह हमारे विपय में क्या सोचेंगे ? मैं तो इसे अपना अपमान समझता हूँ।

मैंने पूछा, "क्या यह बात ठीक है कि यदि उनके घर अतिथि आ जाएं तो उनको कठिनाई होगी ?"

"कठिनाई हो। परन्तु हमारे साथ पहले वादा न किया होता।"

मैंने कहा, "इसमें अपमान की कौन सी बात है ? आप अपने को एक मिनट के लिये मकान का मालिक समझें। यदि आपकी अनुपस्थिति में आप की पत्नी या आप का कोई प्रिय-जन एक कमरा किराए पर दे डाले जिसकी आपको आवश्यकता हो। आपको पीछे से भूल का पता चले तो क्या आपका व्यवहार भी वैसा नहीं होगा जैसा हमारे साथ किया गया है। यदि आप भी वही कुछ करने पर मजबूर होंगे जो हमारे साथ हुआ है तो मालिक मकान पर वचन भंग करने या अपमानित करने का दोष लगाना न्याय-युक्त नहीं।"

मेरे मित्र की समझ मे यह बात आ गई। रोष और क्रोध का बोझा उनके मन से उतर गया। और वह किसी अन्य मकान की खोज मे लग गए।

हमारे दफ्तरों और बाज़ारों में, मनोरंजन में, सभाओं में, घरों मे सर्वत्र ही न्याय का अभाव दिखाई देता है। कोई बटोही रास्ता पूछता है तो हम उसे बड़ी वेपरवाही से उत्तर देते हैं। हम तनिक भी विचार नहीं करते कि यदि हम स्वयं बटोही हों और कोई व्यक्ति हमारे प्रश्न की ऐसी उपेक्षा करे तो हमें कितना दुख हो। एक बार बड़े जोर की वर्षा हो रही थी। एक रास्ता चलने वाला वर्षा और शीत से बचने के लिये एक दफ्तर के द्वार के अन्दर जा खड़ा हुआ। एक बाबू जी उसे कहने लगे, भाई साहिब, "यह सराय नहीं है।" मैं बहुत देर तक यह सोचता रहा कि क्या वह स्वयं भी कभी यह शब्द सुन सकते हैं।

यही दशा हमारे घरों की है। बच्चे से कोई चीज़ टूट जाती है। हम टूटी हुई चीज़ की मरम्मत तो कर नहीं सकते, बच्चे की मरम्मत के लिए तैयार हो जाते है। एक बार एक बालक ने भूल से मेज़ पर सियाही गिरा दी। मेज़ पोश खराब हो गया। बड़ा भाई क्रोध से पागल हो उठा। उसने फैसला किया कि छोटा घर

आएगा तो खूब खबर लूंगा। इसके पश्चात जब उसने सोचा कि वह स्वयं भी कई बार गलती से सियाही गिरा कर मेज़ पोश ही नहीं, कापियां और किताबें तक खराब कर चुका है तो उसका क्रोध उड़ गया।

बच्चों के व्यक्तित्व के साथ बहुत कम न्याय किया जाता है। माता पिता और घर के बड़े बूढ़े सब बच्चों को आसानी से धोखा देते रहते हैं। उनके साथ झूठ बोलते हैं और अपरोक्ष रूप से उनको भी झूठ बोलने की आदत डाल देते है। उनके सामने बहाने बनाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चे भी बहाने बनाते है। बच्चों को बात बात पर झिड़का और डांटा जाता है। इससे उनके व्यक्तित्व पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। उनके हृदय पर हीन भावना की कालिमा छा जाती है। वह आपको दीन हीन समझने लगते हैं और मन ही मन माता पिता को कोसते रहते हैं। छोटी आयु के बच्चों के सामने माता पिता अपने दाम्पत्त्य सम्बन्धों की भी उचित रक्षा नहीं करते। बच्चा ही तो है, इन बातों को क्या समझे ? इस आत्म प्रवंचना में फंसकर वे बच्चे के नन्हे से मन और मस्तिष्क में अनैतिकता और निर्लज्जता का वह बीज बो देते है जो एक बहुत बड़ा वृक्ष बनकर उसकी नैतिकता को भूमि की सारी नमी चूस लेता है और वह भूमि शुष्क और बंजर रह जाती है। बच्चों मे छोटी आयु या नवयौवन के अन्दर जितने भी कामुक विकार पाये जाते है उनमे से लग भग ६० प्रतिशत माता पिता की कृपा के कारण उत्पन्न होते है। काम शास्त्र के विशेषज्ञों ने अपने वर्षानुवर्ष के प्रयोगों के पश्चात यह तत्व स्पष्ट कर दिया है कि एक वर्ष की आयु का बच्चा भी अपने माता पिता के कामुक सम्बन्धों से प्रभावित हो सकता है। मगर हमारे घरों मे एक वर्ष का बच्चा तो क्या दस वर्ष के बच्चों के व्यक्तित्व की परवाह नहीं की जाती। उनकी दृष्टि का कोई आदर नहीं। उनके

जीवन और उनके भविष्य के साथ कोई न्याय नहीं होता। और इस अन्याय का परिणाम स्पष्ट है।

कुछ लोग शिकायत करते हैं कि यद्यपि हम अपने बच्चों के साथ झूठ नहीं बोलते तो भी वह हमारे साथ झूठ बोलते हैं। बात यह है कि बच्चे को सच बोलना सिखाने के लिए यह पर्याप्त नहीं कि आप सदा उसके साथ सच बोलें। न्याय इससे भी अधिक आवश्यक है। यदि वह आप के सामने झूठ बोलता है तो किसी मजबूरी के कारण बोलता होगा। उदाहरण के तौर उसके हाथ से गिरकर कोई वस्तु टूट जाती है। आप उससे पूछते हैं तो वह तुरन्त इन्कार कर देता है। कहता है कि मुझे कुछ पता ही नहीं। आप समझते हैं कि वह झूठ बोलता है। वस्तु स्थिति यह है कि वह सत्य कहकर आप से न्याय नहीं पा सकता। पिट जाने के डर से वह सच बोलने का साहस नहीं करता। आपका नाराज़ होना, झिड़की देना, मारपीट करना ऐसा अन्याय है जो उसे झूठ बोलने पर मजबूर करता है।

यह बात कभी नहीं भूलनी चाहिए कि जो समाज अपने बच्चों के साथ न्याय नहीं करता, बच्चे भी बड़े होकर उसके साथ न्याय नहीं करते। उनके साथ जितना अन्याय होता है, वह उसका पूरा पूरा बदला लेते हैं।

जिस प्रकार हमारे सामाजिक और घरेलू जीवन में न्याय का अभाव है उसी प्रकार हमारा राजनैतिक जीवन भी इससे सर्वथा विहीन है। बड़ी बड़ी राजनैतिक पार्टियां अपने विरोधियों को बद-नाम करने और उनसे बदला चुकाने के लिए किराये के गुण्डों से काम लेती हैं। सभाओं में सभ्यता और नैतिकता से गिरे हुए भाषण किए जाते हैं। दीवारों पर अत्यन्त असभ्य शब्दों में छपे हुए इश्तहार लगाये जाते हैं। पुस्तकों में धार्मिक तथा राजनैतिक नेताओं पर ऐसे ऐसे आक्षेप किए जाते हैं जिन्हें पढ़कर कोई भी

न्याय शील व्यक्ति दर्द और घृणा की अनुभूति के बिना नहीं रह सकता। राजनैतिक सम्मेलनों में काली झण्डियों के प्रदर्शन, गन्दे और बाजारी नारे, लड़ाई झगड़े और ईंट पत्थर का खुल्लम खुल्ला प्रयोग हमारे देश में फैले सार्वजनिक अन्याय के प्रमाण हैं।

परन्तु सार्वजनिक अन्याय के वास्तविक अपराधी हमारे समाचारपत्र हैं। गेटे ने कहा है-"एक व्यक्ति का वक्तव्य कोई वक्तव्य नहीं। यदि दूसरे व्यक्ति का वक्तव्य आपके पास नहीं पहुँचा तो पहले वक्तव्य का कोई महत्व नहीं समझना चाहिए।" परन्तु भारतीय समाचार पत्रों की दृष्टि में एक ही व्यक्ति का वक्तव्य विश्वसनीय है। दूसरे पक्ष का वक्तव्य प्रकाशित तो करना दूर रहा उसकी प्रतीक्षा भी नहीं करना चाहते। जिस व्यक्ति को जनता में बदनाम करना हो उसे समाचार पत्र के निर्दयी कालमों के हवाले कर दिया जाता है। कोई भी व्यक्ति समाचार पत्रों की खुशामद करके या उनको कुछ आर्थिक सहायता देकर अपने विरोधी को बदनाम कर सकता है। विरोधी पार्टियों के नेताओं, उनके नियमों और उन राजनैतिक या धार्मिक विचारों पर ऐसी विचार विहीन आलोचना की जाती है जिसमे न्याय और मानवता की छाया तक नहीं होती। हमारे सम्पादक और लेखक जब तक पगड़ियां उछालने की कला मे प्रवीण न हो जाएँ, अपने को प्रवीण पत्रकार नहीं मानते।

जिस देश के राजनैतिक क्षेत्र में इस प्रकार अन्याय का ताण्डव हो रहा हो, वह स्वतन्त्र हो जाने के पश्चात भी स्वतन्त्र नहीं कहला सकता। न्याय के बिना न कोई संघठन सम्भव है और न ही स्वतन्त्रता बनी रह सकती है। वह लोग निश्चय ही भ्रम में फंसे हुए हैं। जो इतने नैतिक पतन के बावजूद भी अपने को स्वतन्त्र समझते हैं। संसार में अधिकारों की रक्षा के लिए परिश्रम करना पड़ता है। जो राष्ट्र स्वतन्त्रता के साथ आने वाले कर्तव्यों को

नहीं पहचानते उन को घोर कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है।

समस्त राष्ट्र में न्याय की एक लहर पैदा करने के लिए अनिवार्य है कि सब से पहले व्यक्ति को न्याय शील बनाया जाए। जब तक हम में से प्रत्येक व्यक्ति अपने आप के साथ न्याय करने का आदि नहीं हो जाता, तब तक हम आशा नहीं कर सकते कि हमारे सामूहिक जीवन में न्याय आ जाएगा। अपने आप के साथ न्याय करने के कई पहलू हैं। कोई व्यक्ति राम को यह बताता है कि अमुक अमुक व्यक्ति तुम्हारे विरुद्ध यह बातें कर रहे थे। इस पर राम क्रोध से आग बबूला हो जाता है। उन लोगों को या तो पीठ पीछे जली कटी सुनाता रहता है और या उनके साथ लड़ झगड़ कर बात को बढ़ाता है। ऐसा व्यवहार न तो बुद्धिमत्ता है और न न्याय। बुद्धि मत्ता तो इस लिए नहीं कि उसने दूसरों की आलोचना से कोई लाभ नहीं उठाया। जरा सा विचार करने से उसको पता लग जाता कि उसके विरुद्ध जो शिकायतें की गई हैं उन मे कुछ न कुछ सत्य अवश्य है। यह सत्य उसके अपने लिए लाभ दायक हो सकता था। धैर्य और विचार करने की आदत न होने के कारण वह उस लाभ से वञ्चित रहा जो वह इस से उठा सकता था। दूसरे शब्दों में उसने स्वयं अपने आप से अन्याय किया।

एक व्यक्ति ने अपने अनुभव की बात बताई है। उसका कहना है; मेरे एक विरोधी ने मेरी आलोचना करते हुए मेरे एक मित्र को बताया कि यह व्यक्ति सफाई का कोई ध्यान नहीं रखता। आज मैंने उसके पांव देखें। बहुत ही गन्दे थे। नाखूनों मे मैल भरा हुआ था। यह बात मुझ तक भी पहुँच गयी। मैंने घर जाकर जूते उतारे। पैरों को देखा तो पता लगा कि वह व्यक्ति सच्चा था। यद्यपि में प्रतिदिन स्नान करता था तो भी पाँवों की सफाई को शरीर

की सफाई का भाग न समझता था। नाखून कभी ही कटवाये होंगे। उस दिन से मैंने निश्चय कर लिया कि अपने पैर यथा-सम्भव साफ रखूंगा। इस घटना को चार बरस हो गये। जिस व्यक्ति ने मेरी आलोचना की थी उसको ज्ञान ही नहीं कि मैं मन ही मन उसका कितना आभारी हूँ। अपने शरीर की मालिश करते समय जब में अपने पैरों की मालिश भी करता हूँ, नहाते समय जब उन्हें भी साबुन से धोता हूँ, स्नान के पश्चात उन्हें भी तौलिए से पोंछता हूँ तो मेरे मन में अपने उस आलोचक की याद आ जाती है। इससे मैं वह सच्ची खुशी पाता हूँ जो किसी की आलोचना के अतिरिक्त अपने आप के साथ न्याय करने से प्राप्त होती है।

परन्तु आलोचना से प्रभावित होकर न्याय करना बड़ा कठिन है। कई बार हम अपने निकट मित्रों की आलोचना से भी न्याय नहीं कर सकते और लोगों की आलोचना से तो क्या करना है। हमारे बहुत से मिलने वाले मित्र हर समय अपना मुंह खुला रखते है। कई नाक में अंगुलिया डालते रहते हैं। कई लोग अपने दांत साफ नहीं करते। जब वे बहुत समीप होकर बात चीत करते है तो हमें उन से घिन आती है। परन्तु यह जानकर कि वे हमारी आलोचना के साथ न्याय नहीं करेंगे, हम उनकी बहुत सी स्पष्ट त्रुटियों की ओर भी उनका ध्यान आकृष्ट करने का साहस नहीं करते।

परन्तु यह आवश्यक नहीं कि दूसरों के बताने पर ही हमें अपनी अन्याय-वृत्तियों का बोध हो। हमें आत्म निरीक्षण का स्वभाव बनाना चाहिए। इससे हमें बहुत से ऐसे अन्याय से मुक्ति मिल जाएगी जो हम दूसरों के साथ नहीं अपने साथ करते हैं। अपने शरीर, अपने मस्तिष्क, अपनी आत्मा और अपनी दैनिक क्रियाओं के साथ न्याय करना जीवन की एक महत्त्वपूर्ण कला है और यह कला आत्म-निरीक्षण से ही प्राप्त की जा सकती है। यदि प्रत्येक व्यक्ति अपनी उन आकांक्षाओं का निरीक्षण करे

जिन की पूर्ति के लिए उसने अपने शरीर और मस्तिष्क की सभी शक्तियां लगा दीं तो ज्ञात होगा कि कोई भी व्यक्ति दूसरों के अन्याय का शिकार उतना नहीं होता जितना स्वय अपने अन्याय से पादाक्रांत होता है। इस सिलसिले में पाठकों के सामने अपना ही एक उदाहरण रखूंगा। विद्यार्थी जीवन के बहुत से वर्ष और उसके पश्चात भी कुछ वर्ष मैंने किताबी कीड़ा बन कर बिताए हैं। गर्मियों के दिनों मे भी लैम्प के प्रकाश में पतंगों के जमघट में रात के एक एक बजे तक अध्ययन मे लगा रहता था। आज मैं सोचता हूँ कि मैं ने अपनी आंखों से कितना अन्याय किया। ऐसा अन्याय जिस का सुधार असम्भव है। ऐनक के सहारे जीता हूँ।

हमारा शरीर और हमारा मस्तिष्क दिन भर हमारी सेवा करते है। रात को वे विश्राम करना चाहते हैं। हम उन्हें मजबूर करते हैं कि वह हमारे साथ कई कई घण्टे ताश खेलने मे हमारे साथ व्यस्त रहें या सिनेमा जाकर नींद गंवाएं। हम नावल पढ़ना चाहते है इस लिए वे रतजगा काटें। इस प्रकार की सभी मांगे इस बात की द्योतक हैं कि हम अपने आप से भी न्याय नहीं कर सकते। शरीर चीखता है और न्याय की दुहाई देता है कि दिन भर के परिश्रम के पश्चात मुझे विश्राम की आवश्यकता है। परन्तु हम जान बूझ कर उस की प्रार्थना की उपेक्षा कर देते हैं।

अतएव, जैसा कि प्रमाणित किया जा चुका है। न्याय जीवन का सर्वोपरि सत्य है। आवश्यकता इस बात की है कि हम इसे अपने जीवन की सभी क्रियाओं का आधार बनाएं। हम न्याय करे अपने मित्रों के साथ, अपने शत्रुओं के साथ, अपने पड़ोसियों के साथ, अपने आलोचकों के साथ, अपने से बड़ों के साथ, अपने बच्चों के साथ, अपने शरीर और आत्मा के साथ, सजीव और निर्जीव वस्तुओं के साथ। और यह न्याय भी हो आदर, सहानुभूति और उदारता से परिपूर्ण!

मित्रता

सफल जीवन के लिए तीन चीजें बहुत आवश्यक मानी गई हैं— स्वाथ्य, धन और बुद्धि। इन में एक चौथी चीज, मित्रता— भी शामिल कर लेनी चाहिए। यह कहना अत्युक्ति न होगी कि सफल मित्रता को प्रथम स्थान देना चाहिए। जिस व्यक्ति को अच्छे मित्र प्राप्त नहीं हो सके वह स्वास्थ्य, धन और बुद्धि के होते हुए भी जीवन का पूरा आनन्द नहीं उठा सकता। उसके जीवन रूपी भवन में एक ऐसी खिड़की बन जाएगी जिस के द्वारा उस का आत्मिक आनन्द बाहर निकलता रहेगा। और वह धीरे २ उनसे वंचित हो जाएगा। उसके मनो-विचारों का क्रम भंग हो जाएगा जिस से उस के मन की शांति नष्ट हो जाएगी। वह इस हरी भरी और आबाद दुनियां में अपने आप को अलग-थलग, अकेला और उदास पाएगा। अलगाव, अकेलेपन तथा असम्बद्धता का यह आभास अच्छे भले लोगों को पागल बना देता है।

स्वास्थ पैतृक सम्पत्ति के रूप में मिल सकता है। धन और बुद्धि भी इसी प्रकार प्राप्त हो सकती है। परन्तु मित्रता इस ढंग से नहीं मिल सकती। प्रकृति की ओर से भेंट अथवा देन के तौर पर भी यह नहीं मिलती। इसे एक विज्ञान या कला समझा जा सकता है। जिसे अभ्यास और अनुभव द्वारा कमाना पड़ता है। जिस प्रकार जीवन की प्रत्येक क्रिया के लिए मन्त्रों से काम लिया जाता है। उसी प्रकार मित्रता के लिए भी मन्त्रों की आवश्यकता है। बलिदान, धैर्य, नम्रता, क्षमा-शीलता और हंस मुख होना मित्रता पैदा करने और उसे परवान चढ़ाने के आवश्यक नियम हैं।

कोई भी मनुष्य स्वयमेव पूर्ण नहीं। परन्तु पूर्णत्व प्राप्त करने की भावना प्रत्येक व्यक्ति के मन में रहती है। प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई नैतिक अथवा कलात्मक त्रुटि अवश्य होती है। जितना कोई व्यक्ति अपनी दुर्बलताओं को भली भांति अनुभव करेगा और जितनी उसमें उनको दूर करने की भावना होगी उतना ही वह अपने मित्रों से लाभ उठा सकेगा। जो व्यक्ति अपनी नैतिक उच्चता के भ्रम में ग्रस्त हो और दूसरों को अपने से नीचा समझे, वह न तो सफल मित्र बन सकता है और न ही अच्छे मित्र बना सकता है। जिस व्यक्ति को भी आनन्द पूर्ण मित्रता की खोज हो उसके लिए आवश्यक है कि अपने आपको उच्चता के भ्रम से बचाए अपने आप को पूर्ण न समझे, अपनी बुद्धि पर पारिवारिक अथवा व्यक्तिगत घमण्ड का पर्दा न पड़ने दे।

यह शिकायत प्राय: सुनी जाती है कि "अमुक मित्र ने मेरे साथ मित्रता निभाई नहीं।" और "अमुक व्यक्त, ने मेरे साथ बेवफाई की।" "अमुक ने गद्दारी करके मुझे कठिनाईयों में डाल दिया है।" और "उस ने स्वार्थ पूर्ति के लिए मुझे मित्र होने का धोखा दिया और स्वार्थ पूरा होते ही मुझे छोड़ दिया।" सम्भव है इन में से कोई शिकायत ठीक भी हो। परन्तु इस प्रकार की ८० प्रतिशत शिकायतें सर्वथा गलत होती हैं। इनका मित्रता से कोई सम्बन्ध नहीं। वरन् यह शत्रुता, द्वेष और ईर्ष्या का फल है। जिस सम्बन्ध में से यह शिकायतें उत्पन्न हो सकती हैं उसे मित्रता कहना ही गलती है। यह संदिग्ध सम्बन्ध तथा स्वार्थ के ताने बाने के बिखरे हुए धागे हैं। इन शिकायतों का अर्थ यह है कि मित्रता कभी पक्की ही नहीं हुई थी। इनको एक अपूर्ण पहचान की प्रतिक्रिया कहना अधिक उपयुक्त है।

"मित्र का चुनाव" एक बड़ी कठिन समस्या है। मित्र वास्तव

में चुने नहीं जाते, स्वयं ही बन जाते हैं। इस सिलसिले में सबसे महत्त्वपूर्ण नियम यह है कि हम अपने वातावरण में से ही मित्र बनाएं। हम जिस कारखाने में, दफ्तर में या संस्था में काम करते हों, जिस मुहल्ले में रहते हों, जिस बाज़ार में हमारा आना जाना हो या जिस कालेज में पढ़ते हों, वहीं अपने मित्र बनाएं। दूसरे शब्दों में हमारे आस पास के साथी ही हमारे मित्र हों। अपने आस पास के समाज से हटकर अन्यत्र हम अच्छे मनुष्य तो शायद पा सकें परन्तु अच्छे मित्र मिलना कठिन है। सफल मित्रता वही है जो हर समय हमारे आस पास घूमती रहे। यह समीप रहने वाली मित्रता हमारे दैनिक जीवन मे हर समय दिलचस्पी और प्रसन्नता बनाए रख सकती है। हमारे विकास और सफलता में हमारी सहायक हो सकती है। हमारे जीवन के निराश क्षणों में आशा की ज्योति बनकर चमक सकती है।

मित्रता किसी सन्धि का नाम नहीं और सन्धि-बद्ध मित्रता कभी सफल भी नहीं हो सकी। न ही कभी वफादारी और मित्रता के वचन ही काम आ सके हैं। मित्रता की उपयुक्त एवं ठोस परिभाषा यह दी जा सकती है कि दो व्यक्तियों के मानसिक और नैतिक विचारों में समानता और सामंजस्य पैदा हो जाए। यह सामंजस्य जितना एक दूसरे के अधिक निकट और एक-रस होगा, मैत्री सम्बन्ध उतने ही दृढ़ और चिरस्थाई सिद्ध होंगे। जिन लोगों के मानसिक, नैतिक और सांस्कृतिक वातावरण में साम्य नहीं और जिन मे विषमता अधिक है, वह अपनी आत्माओं को सम-रस नहीं कर सकते। सफल मैत्री के आकांक्षी को देखना चाहिए कि जिस व्यक्ति को वह मित्र बनाना चाहता है उसकी परिस्थितियां किस तल पर हैं। यदि सम-तल परिस्थितियां हों तो ठीक है अन्यथा इस प्रकार की मित्रता के लिए हठ नहीं करनी चाहिए।

यह एक स्वाभाविक सी बात है कि जिस व्यक्ति को हम अपना मित्र समझते अथवा बनाते हैं, उसके साथ बहुत-सी आशा बांध लेते हैं। मित्रता जितनी गहरी होगी, आशाएं भी उतनी ही अधिक होंगी। परन्तु सम्बन्ध कितने भी गहरे क्यों न हों, यह आवश्यक नहीं कि हमारी, आशाएं हर हाल में पूरी हों। कई बार हमारे मित्र में सामर्थ्य ही नहीं होती कि हमारी सभी आशाओं को पूरा कर सके। कई बार आशाएं भी अनुचित होती हैं और हमारा मित्र उन्हे नैतिक दृष्टिकोण से स्वीकार नहीं कर सकता। उन्हें स्वीकार करके उसे कई प्रकार की कठिनाईयां पेश आ सकती हैं। अनेक बार वह शुद्ध हृदय से यह अनुभव करता है कि हमारी इच्छा की पूर्ति केवल उसके लिए ही नहीं, हमारे लिए भी हानिकारक सिद्ध होगी। इस आधार पर वह सहायता करने से कतराता है। हम उसकी हार्दिक अवस्था का अनुमान न कर सकने के कारण भ्रम का शिकार हो जाते है और समझते है कि हमारा मित्र समय पर हमारे काम नहीं आया। अतः उत्तम और सफल मित्रता वही हो सकती है जिस में असाधारण आशाएं शामिल न की जाएं। जितनी बड़ी और प्रबल हमारी महत्त्वाकांक्षा होगी उतनी ही बड़ी हमें ठोकर भी लगेगी। जितनी बड़ी आशा हम बांधेंगे, उसके टूटने पर उतनी ही अधिक निराशा भी होगी, गेंद को जितनी शक्ति के साथ दीवार पर मारा जाए, उतनी ही शक्ति से वह पीछे की ओर उछलेगी। प्रत्येक क्रिया की प्रतिक्रिया समान शक्ति के साथ होती है।

उस मित्रता के सरस होने में कोई संदेह नहीं जिस में तकाजे कम से कम हों और कम से कम हठ हो। दिन प्रति दिन होने वाली हठ और तकाजे हमें एक दूसरे के निकट लाने की बजाए दूर कर देती हैं। बुद्धिमान मित्र वही हैं जो एक दूसरे पर बोझ नहीं बनते। मांग चाहे कर भी दी जाए मगर हठ नहीं होनी

चाहिए। आप अपने मित्र को खाने पर आमन्त्रित कर लें। मगर यदि वह किसी कारण इन्कार करे तो उसे हठ करके आने के लिए विवश नहीं करना चाहिए। कई बार ऐसा होता है कि आप अपने मित्र को सिनेमा या किसी मनोविनोद के अवसर पर बुलाते हैं। वह इन्कार कर देता है। लेकिन आप तब तक उसका पीछा नहीं छोड़ते जब तक कि उसे अपने साथ जाने के लिए विवश न कर लें। विवशता और हठ के यह छोटे २ बन्धन परस्पर हर्ष के लिए बहुत ही हानिकारक होते हैं। बहुत बार यही छोटी २ बातें इकट्ठी होकर हमारे परस्पर प्रेम को खत्म कर देती हैं। मित्रता घृणा के रूप में बदल जाती है।

यह कभी नहीं समझना चाहिए कि मित्रता में कभी इन्कार करने या इन्कार सुनने की आवश्यकता नहीं पड़ेगी। कई अवसर ऐसे भी आ जाते हैं जब आपको अपने किसी मित्र की इच्छा पर इन्कार करना पड़ेगा और कई बार आपको 'हां' की बजाए "न' सुननी पड़ेगी। परन्तु मित्रता के कोमल सम्बन्ध पर इन्कार का बोझ उतना ही होना चाहिए जितना वह आसानी से सहन कर सके। सच पूछा जाय तो इन्काह करना भी एक कला है। कुछ इन्कार तो हृदय को घायल कर देते हैं और कुछ इन्कार होने के बावजूद हमारी सहानुभूति जीत सकते हैं। जब कभी आपको अपने मित्र की किसी बात को इन्कार करना पड़े तो आपको ऐसे शब्दों से काम लेना चाहिये जिन्हें सुनकर उसके मन पर किसी प्रकार का बोझ न पड़े। प्रायः देखा गया है कि दो मित्रों में वैमनस्य केवल इस लिए आ जाता है कि उन्हें इन्कार करने का ढंग नहीं आता। जो भी व्यक्ति अपनी मित्रता को सफल बनाना चाहता है उसका कर्तव्य है कि इन्कार को बड़े सुन्दर ढंग से प्रस्तुत करे।

जिस प्रकार इन्कार करना कला है, वैसे ही मांग करना भी

एक कला है। मैत्री सम्बन्धों में सूक्ष्म तम स्थान वह है जहां मांगने की आवश्यकता ही न पड़े। उस स्थान पर लगभग सभी इच्छाएं बिना मांग के ही व्यक्त की जा सकती हैं। उनको शब्दों के बिना भी समझा और स्वीकार किया जा सकता है। न हठ करने की आवश्यकता होगी और न आभारी होने की। सबसे अच्छी मित्रता वही होगी जिसमें कभी स्पष्ट तौर पर मांगने की आवश्यकता ही न पड़े। आप का मित्र भी आपको ऐसा करने की झिझक सहन करने का अवसर न दे। मान लीजिये आपको आर्थिक कठिनाई है। अब यह आवश्यक नहीं कि आप अपने मित्र को स्पष्ट शब्दों में ऋण देने के लिये कहे। आपको किसी समय बात चीत के दौरान अपनी कठिनाई की ओर संकेत कर देना चाहिये। इसी से यदि आपको अपने साथी से आर्थिक सहायता मिल जाय तो ठीक अन्यथा मांग को दुहरा कर अपने साथी को इन्कार करने की द्विविधा में न डालें।

आवश्यकता और स्वार्थ दो भिन्न शब्द हैं। इनको एक दूसरे के स्थान पर गलत नहीं समझना चाहिये। आवश्यकता मानव प्रकृति की वह मांग है, जो दूसरों को हानि पहुँचाए बिना पूरी हो जाती है। स्वार्थ भी मानव प्रकृति का ही एक भाव है इसकी पूर्ति दूसरों को हानि पहुँचाए बिना सम्भव नहीं। एक सफल मैत्री में आवश्यकता का व्यक्त करना तो बुरा नहीं अपितु स्वार्थ सिद्धि मित्रता के विरुद्ध है। किसी आत्मा की पवित्रतम स्थिति तो यह है कि मित्रों के अतिरिक्त शत्रुओं के साथ भी स्वार्थ-पूर्ण व्यवहार न करे। परन्तु मानव मानव ही है। वह किसी समय अपने मित्रों के मामले में भी स्वार्थी हो सकता है। यह बन्धन तो नहीं डाला जा सकता कि आपके मन में कभी यह भाव ही उत्पन्न न हो

क्यों कि यह बात आपके बस की नहीं। तो भी यह अवश्य कहा जा सकता है कि आप इस भावना को काबू में रखें। मन से बाहर कभी न निकलने दें। जब भी यह भाव बाहर निकलेगा, इससे टक्कर लेने के लिये आपके मित्र के मन से भी वैसा ही भाव निकलेगा। वरन् उसमें घृणा भी सम्मिलित होगी। इस परस्पर टकराव से मित्रता का पवित्र सम्बन्ध निश्चय ही टूट जाएगा।

छोटी से छोटी बात में स्वार्थ को छुपा कर रखने की अत्याधिक आवश्यकता है। इससे आपको हानि नहीं लाभ होगा। उदाहरणार्थ आपके सामने खाने की चीजें रखी हुई है। आप अपने मित्र के साथ बैठे उस पर से फल उठाकर खा रहे हैं। आपकी दृष्टि सबसे अच्छे और सुन्दर सेब पर पड़ती है। स्वार्थभाव आप से कहेगा कि आप उसी सेब पर हाथ साफ करें। आप इस भावना के वश में होकर उसे उठा लेते है। आपका मित्र आपके स्वार्थ को भांप जायगा और यह छोटी सी बात उसके हृदय में घृणा की एक रेखा सी उत्पन्न कर देगी। इसके विपरीत यदि आप अपने स्वार्थ पर नियन्त्रण रखते तो आप का मित्र यह अनुभव करता कि आप उसका ध्यान रख रहे हैं और सबसे अच्छे सेब को उसके लिए छोड़ कर अन्य फल खा रहे हैं। यह अनुभूति उसके मनमें आप के प्रेम को उजागर करेगी। असम्भव नहीं कि वह स्वयं ही आपको यह फल खाने के लिये कहे जिसके लिये आपके मन में स्वार्थ जागा था।

एक पुरानी और प्रसिद्ध उक्ति है कि अपने जीवन के भेद मित्रों को भी नहीं बताने चाहिएं। न जाने कोई मित्र कब शत्रु बन जाए और उन भेदों को खोल कर हमें हानि पहुँचाए। निस्संदेह यह उक्ति उन लोगों के लिये लाभदायक हो सकती है

जो रहस्यमय जीवन में विश्वास रखते हों। परन्तु जो लोग रहस्य रखने मे विश्वास ही नहीं रखते उनके लिये इस उक्ति की कोई कद्र नहीं। अनुभव की बात है कि रहस्य पूर्ण जीवन में कोई प्रसन्नता या आनन्द नहीं। उस मित्रता का भी कोई महत्त्व नहीं जिसमें एक दूसरे से पृथक रहस्य उचित समझे जाएं, जिसमें पग पग पर भेद खुल जाने का भय हो। झूठ प्रकट हो जाने पर उससे होने वाली लज्जा का भय और ढोल का पोल खुल जाने का ख्याल जीवन को अजीर्ण बना देता है। क्यों न रहस्य रखना ही छोड़ दिया जाए? क्यों न मन को ऐसा बना लिया जाए कि जब भी कोई व्यक्ति टटोलना चाहे, अन्दर बाहर से भली भांति टटोल सके? यह मुसीबत क्यों खरीदी जाए कि हमारा अमुक भेद खुल गया तो अमुक कठिनाई सामने आ जायेगी?

रहस्य उसी के होते हैं जिसका जीवन सीधा और समतल नहीं। जो व्यक्ति अन्दर और बाहर से समान है उसे रहस्य रखने की क्या आवश्यकता है? एक बुद्धिमान का कथन है, "जो कुछ तुम्हें अपने मित्रों से छुपाना पड़े, वह करना छोड़ दो।"

प्रत्येक व्यक्ति में कोई न कोई त्रुटि अवश्य होती है। यह असम्भव है कि आपको ऐसे मित्र मिल सकें जिनमें कोई त्रुटि या दुलर्बता न हो। त्रुटियां आप के अन्दर भी हैं और उनके अन्दर भी। यह सब कुछ जानते हुए भी हम न जाने अपने मित्रों से यह आशा क्यों रखते हैं कि वह मनुष्य न होकर देवता हों और उनमें कोई त्रुटि न हो? यह अत्यावश्क है कि हम अपनी इस इच्छा पर काबू पालें। जब आप किसी को अपना मित्र बना ले तो उसकी त्रुटियों को हंसी-खुशी सहन करें। अनेक बार वह आपकी उपेक्षा करेगा, कई बार वह वचन पूरा नहीं करेगा, कई बार वह किसी अन्य मित्र से आपके विरुद्ध शिकायत भी

कर देगा । और अपने मैत्री सम्बन्ध के भरोसे वह आपके विश्राम को भी समय समय पर भंग करेगा आप अपने हृदय को इन सभी परीक्षाओं में पूरा उतरने के लिए तैयार करें, कभी आलोचना न करें। कभी नाराज न हों और कभी शिकायत न करें। शिकायतें और आक्षेप, रूठना और मनाना मित्रता के लिए विष के समान हैं। प्रायः एक महान् और सहानुभूतिपूर्ण मौन इन सब बातों की पूर्ति कर देता है। शिकायतें अधिकतः उलटा ही प्रभाव डालती है। आलोचना से सुधार नहीं होता वरन् और भी विकार उत्पन्न होता है। रूठने और मनाने से मन समीप नहीं आते, और भी दूर हो जाते है।

जहां प्रेम के पुष्प है वहाँ ईर्ष्या और द्वेष के कांटे भी हैं। बुद्धिमान वही है जो अपने हृदय को इन कांटों से घायल न होने दे। कई बार ऐसा भी होता है कि दो दिलों के परस्पर प्रेम में एक तीसरा दिल आ कूदता है। प्रेम और मित्रता के मामले में यह बड़ी जटिल उलझन है। इस में से निकल जाना सहल नहीं तो भी प्रयत्न करना आवश्यक है।

जब कभी आपका मित्र किसी और व्यक्ति की ओर आकृष्ट होने लगे तो ईर्ष्या की पीड़ा को प्रकट न होने दें। जितना आप अपने मित्र को हटाने का प्रयत्न करेंगे, उतनी ही आपको असफलता होगी। तराजू का पलड़ा उसी ओर अधिक झुकता है जिस ओर बोझ अधिक होगा। जब कभी आप का मित्र आपकी बजाए किसी दूसरी ओर झुक जाए तो आपको तुरन्त पता लगना चाहिए कि आपके गुणों का तोल दूसरे से कम समझा गया है। आप पीछे हटने या हटाने की बजाए पहले ही स्थान पर खड़े रहें और बड़े धैर्य के साथ उन नैतिक बातों का अध्ययन करें जिनके कारण आपका मित्र दूसरी ओर झुक गया। यदि वह गुण वस्तुतः ही मूल्यवान हैं तो अपने आप में भी पैदा करने का प्रयत्न करें।

यदि ऐसा न हो सके और वह बातें आपकी शक्ति से बाहर हों तो भी ईर्ष्या और द्वेष की कोई आवश्यकता नहीं। इस आग में जलने का क्या लाभ और इस संकीर्णता का क्या अर्थ ?

मित्रता के लिए बड़े सुकोमल व्यवहार की आवश्यकता है। अत्युत्तम वार्तालाप, गम्भीर आदर-भाव, लाभ पहुँचाने की लगन तथा सीखने व समझने की इच्छा मित्रता की आत्मा हैं।

मित्रता जीवन का आत्मिक खाद्य है। उन्नति और सफलता की सीढ़ी है। उत्तम चरित्र निर्माण करने की सामग्री है। परेशानियों और कठिनाइयों का इलाज है। स्वास्थ्य और आनन्द का आधार है और सफल जीवन व्यतीत करने का सर्वोत्तम तरीका है।

सफल मित्रता का आनन्द वही व्यक्ति ले सकता है जो उदार हो, छोटी मोटी भूलों को भुला सकता हो और बलिदान की भावना रखता हो। जिसके हृदय में कोई स्वार्थ न हो, कोई भेद और रहस्य न हो और जो अपने निजी आनन्द में अपने मित्रों को शामिल कर सकता हो।

———

आपत्ति में

जीवन सदा एक रस नहीं रहता। यह उस नदी की भांति है जिस में कभी तेज़ चढ़ाव आता है और कभी दिखावे की लहरें ही होती हैं। हमें हर हाल में इसको पार करना है। इसका पानी कम गहरा हो तो बे-परवाही के साथ हँसते और मुस्कराते हुए। चढ़ाव अधिक हो तो बड़ी सावधानी, साहस और धैर्य के साथ। कई बार पानी ही नहीं होता और नंगे पाँव जलती हुई रेत पर से गुजरना पड़ता है। जीवन अर्थात् समय की गति नियम बद्ध है। हमारी इच्छा हो या न हो, हम इसके साथ चलने के लिए विवश हैं।

पालन पोषण की त्रुटि समझिये या मनकी बनावट का दोष; हममें से अनेक लोग ऐसे हैं जो हर्ष और विनोद के क्षण तो हंसी खुशी बिता देते हैं परन्तु कष्ट और कठिनाई सहन करने की तनिक भी सामर्थ्य नहीं रखते। जैसे ही कोई दुःख या कष्ट सामने आता है वे घबरा जाते हैं। कांटा भी चुभ जाए तो चिल्लाना शुरू कर देते हैं। कभी जमाने के रूखे पन की शिकायत और कभी साथियों की बे वफाई का रोना। भाग्य, ईश्वर की इच्छा तथा मित्रों का चलन सब में से उनको शत्रुता की दुर्गन्ध आने लगती है। मानो समस्त संसार उन का शत्रु हो।

ऐसे लोगों के जीवन में वास्तविक कठिनाइयाँ इतनी नहीं होतीं जितनी निराधार शिकायतें। हर समय रोना पीटना, मुख को उदासीन बनाए रखना, आत्म-ग्लानी ग्रस्त रहना और शिकायतों का विष उगलते रहना उनके स्वभाव और प्रकृति के अंग बन जाते हैं। जिस कार्यालय या सभा में इस प्रकार का एक भी

व्यक्ति बैठा हो, वहां के द्वार दीवार, कमरे में पड़ी प्रत्येक वस्तु और आस पास बैठे सभी लोगों के मुख पर निराशा की झलक दिखाई देने लगती है। एक व्यक्ति का निराश मुख आस पास के सभी लोगों के मनोरंजन को भंग कर देता है। दर्द पूर्ण एक ही बात सारी सभा को उदासीन कर देती है।

वस्तुस्थिति यह है कि हम में से अधिक लोग कष्टों और दुखों की केवल शिकायत करना ही जानते हैं, उन पर विचार करने का स्वभाव नहीं रखते। यदि ऐसे लोगों का यह स्वभाव बन जाए तो उनको यह जानकर बड़ा विस्मय होगा कि जिन परिस्थितियों को हम कठिनाइयों का नाम देते हैं उनमे से आधी हमारे भ्रम से पैदा हुई है। उनका कोई अस्तित्व नहीं, कोई महत्त्व नहीं। वह केवल इस लिए दुख बन गई है क्यों कि हमने उन्हे दुख समझ लिया है। मनस्थिति को तनिक बदल लेने से हम इन कल्पित दुखों को वास्तविक आनंद मे बदल सकते है।

कई साधारण सी कठिनाइयॉ हमे केवल इस लिए हव्वा बनकर डराती और हमारे जीवन को कटु बना देती है क्यों कि हम उनके साथ समझौता नहीं करते। अन्यथा जिस प्रकार हमारे अंदर यह शक्ति होती है कि जीवित व्यक्तियों से समझौता करके द्वेश को मित्रता और सहृदयता मे बदल लेते है। उसी प्रकार अपने रूठे हुए दुखों को भी मना सकते है। जिस दुख के साथ समझौता कर लिया जाए वह हमारे मन मे शिकायतों का विष नहीं पैदा होने देता। इसके विपरीत रूठा हुआ दुख हमारे मन और मस्तिष्क, शरीर और स्वभाव का रक्त तो चूसता है, साथ साथ हमारे साथियों की प्रसन्नता की जड़े भी काट देता है।

मैं जीवन के इस सूक्ष्म किन्तु महत्त्व पूर्ण रहस्य को दो एक उदाहरणों द्वारा स्पष्ट करने का प्रयत्न करूंगा। कई वर्ष पहले की बात है। जिस मकान में मैं रहता था, उसी के एक कमरे में एक

और व्यक्ति रहने लगा जो अपनी टांगें खराब होने के कारण आसानी से चल फिर नहीं सकता था। पहले दिन सायंकाल उसने मुझे चारपाई बाहर निकाल कर बिस्तर बिछा देने के लिए कहा। मैंने अपना कर्तव्य समझ कर वैसा कर दिया। परन्तु जब चार पांच दिन तक लगातार मुझे चारपाई बाहर रखनी पड़ी तो मन ही मन में कष्ट अनुभव करने लगा और सोचने लगा कि मकान बदल लिया जाए। क्योंकि जब मैं उसकी दशा देखता था तो इन्कार या टाल मटोल करने का साहस न होता था और अपने कष्ट की ओर देखता था तो यह बात देर तक निभती दिखाई न देती थी। इस खेंचा तानी में मेरे मन ने मुझे परामर्श दिया कि मैं इस परिस्थिति से समझौता कर लूं। मैं तैय्यार हो गया। समझौता करते ही मेरा जीवन सुखी हो गया। इस से पूर्व मेरे साथी को प्रातः सायं दोनों समय बिस्तर के लिए कहना पड़ता था। अब मैं स्वयं ही हंसी खुशी काम कर देता। चारपाई भी निकाल देता और बिस्तर भी बिछा देता। उसकी सिलवटे भी निकाल देता। इसके अतिरिक्त तिपाई बाहर निकाल कर लैम्प जला देता और उसके सिरहाने पानी इत्यादि रख देता। मुझे इन सब कामों मे आनंद आने लगा। याने जो काम जीवन के लिए दुःख का कारण बन रहे थे, वही अब सुखद प्रतीत होने लगे।

इस समझौते की शर्तें क्या थीं? कुछ भी नहीं, केवल दो एक सीधी सादी बाते। मन ने कहा कि मैं कुढ़ना और शिकायत करना छोड़ दूंगा यदि तुम प्रसन्नता पूर्वक अपने साथी के छोटे मोटे काम कर दिया करो। इसमे तुम्हारा क्या बिगड़ता है। दिन भर अपना काम करते हो। दो चार मिनट के लिए अपने साथी की आवश्यकताओं को अपनी आवश्यकताएं समझ लो। वह तुम्हारी सेवा का पात्र है। इतनी सी बात से यदि तुम किसी की शुभ कामनाएं अपने साथ कर लो तो क्या बुरा है?

इस साधारण-सी घटना ने मेरे सामने जीवन की एक जटिल उलझन सुलझा कर रख दी। अपने तथा आस-पास रहने वालों के जीवन की बहुत-सी समस्याएँ इस समझौते के प्रकाश में हल होती दिखाई दीं। मुझे विश्वास हो गया कि इस से हमारे क्षणिक संकट ही दूर नहीं हो जाते वरन् ऐसे दुख भी सुख बन जाते हैं जिनसे जीवन भर मुक्त होने की आशा नहीं होती। इसके विषय मे एक और दिलचस्प उदाहरण देता हूँ।

एक सज्जन के विवाह को बड़ी देर हो गई मगर उनके संतान कोई न हुई। संतान पाने की इच्छा के वश उन्होंने पहली पत्नी के होते हुए ही एक और विवाह कर लिया। दूसरी पत्नी से उनकी आशा पूर्ण हो गई। उनके एक लड़के का जन्म हुआ। इसका स्वाभविक परिणाम यह हुआ कि उनका अधिक ध्यान दूसरी पत्नी और पुत्र की ओर रहने लगा।

पहली संतान विहीन परन्तु बुद्धिमान पत्नी ने यह स्थिति देखी तो तुरन्त अपने भाग्य के साथ समझौते के लिए तैयार होगई। उसने अपनी सौत को निरन्तर प्रेम, सेवा और सद्भावना द्वारा जीत लिया। उसके पुत्र को अपना पुत्र समझ लिया और उसकी हर सम्भव सेवा अपने ऊपर ले ली। बच्चे को नहलाना, धुलाना, खिलाना, पिलाना उससे प्यार करना, उसे सुखी रखना इत्यादि सब कुछ अपने दैनिक जीवन का भाग बना लिया। यहां तक कि जब तक लड़का समझदार नहीं हो गया उसे पता नहीं लग सका कि उसकी वास्तविक माता कौन है। पति का ध्यान हटते-हटते फिर उसकी ओर झुक गया। परिवार भर मे उसके सम्मान, विश्वास और शुद्ध हृदयता की धाक बंध गई। और उसके जीवन मे यह उक्ति न चल सकी कि सौकनें परस्पर प्रेम के साथ नहीं रह सकतीं।

यह समझौते के जीवन का बहुत उत्तम उदाहरण है। परन्तु

हम देखते हैं कि जिन लोगों मे एक से अधिक विवाह करने की प्रथा होती है, उन का घरेलू जीवन बड़ा कटु और दर्दनाक होता है। उपर्युक्त घराने में भी बहुत सी कटुता पैदा हो सकती थी यदि वह स्त्री अपने जीवन के ताने को सुलझाने के स्थान पर और उलझा देती।

यह भी हो सकता था और प्रायः ऐसा होता भी है कि वह अपने पति का ध्यान दूसरी ओर जाता देखकर घर में खिची खिची रहने लगती। अपनी सौत को अपनी उपेक्षा का कारण समझ कर उससे घृणा करने लगती। उन में परस्पर क्लेश होता, पति के साथ भी बिगाड़ पैदा होता। घर में खाने-पीने, कपड़े-लत्ते लेन-देन और प्रत्येक छोटी-बड़ी बात पर झगड़ा होता। घृणा की आग एक परिवार से निकल कर दो परिवारों में फैलती और जीवन भर उसको और उसके सम्बन्धियों को जलाती रहती। उस अवस्था में उसका जीवन मृत्यु से भी बुरा हो जाता। परन्तु आज वह सन्तुष्ट है। सन्तान हीन होते हुए भी सन्तान वाली है उसे अपने पति और सौत दोनों का विश्वास प्राप्त है। उसने जीवन भर साथ रहने वाले दुख को हर्ष से बदल लिया।

प्राय. लोगों का विचार है कि दु.ख की अभिव्यक्ति से दुःख का बोझ कम हो जाता है। यह विचार सर्वथा गलत है। शिकायतें दुखों में कोई कमी नहीं कर सकतीं। रोने पीटने से मन के घावों पर मरहम नहीं लग सकती। कष्ट का निवारण बुद्धि द्वारा किए गये समझौते सें ही सम्भव है। आपके शरीर पर चोट आ जाए तो आप कितना भी चिल्ला ले घाव और उसका दर्द दूर नहीं होगा। यदि आप दिन भर घाव को कोसते रहे, किसी शत्रु की निर्दयता अथवा दुर्घटना की बे-दर्दी पर दोषारोपण करते रहें तो आपको कभी चैन नहीं मिलेगी। परन्तु दुःख के साथ समझौता करते ही आपको सन्तोष की झलक दिखाई देने लगेगी। अपने घाव में

दिलचस्पी लीजिए। जितनी शक्ति शिकायतों में व्यय होती है, आप वही उसको ठीक करने में लगाएँ। अपने दर्द पर विश्वास करें कि आपके साथ बेवफाई करके भयानक रूप धारण नहीं करेगा। बस, मन को इतना ही बदलने से आपके कष्टो का बोझ हल्का होने लगेगा.।

यह कभी न सोचें कि आपके कष्ट चरमसीमा पर पहुँच चुके है। दुखों की पराकाष्ठा अचेतनता या मृत्यु का दूसरा नाम है। इस विचार को मन मे कभी न आने दे कि आप जैसा अभागा कोई और है ही नहीं। आस-पास देखने से आपको ज्ञात होगा कि सैकड़ों लोग आपसे भी अधिक कष्टों मे घिरे हुए है। इसके अतिरिक्त उनमे से कई प्रसन्नता, सन्तोष एवं धैर्य के साथ अपने दुखों का मुकाबला करते दिखाई देगे। परन्तु स्मरण रहे कि दुखों का मुकाबला रो-धो कर या उनको बुरा-भला कहने से नहीं होता। दुखों का मुकाबला सर्वथा अनोखा मुकाबला है। याने उनके साथ समझौता और प्यार। यह वह शत्रु नही जिन्हे तलवार या विष से मारा जा सके। जो व्यक्ति ऐसा करने का प्रयत्न करता है वह वास्तव मे आत्म-हत्या का अभिलाषी है।

दुख के दिनों मे अपने स्वभाव को यथा सम्भव नरम बनाएँ। जितना झुकना सम्भव हो झुके। आपत्ति ऐसे व्यक्ति पर कभी दया नहीं करती जो नम्रता पूर्वक झुकने के बजाय घमण्ड से तन जाए।

जिन वृक्षों में लचक होती है और जो आंधी और तूफान के सामने झुक कर उसे निकल जाने देते है वह सदा सुरक्षित रहते हैं। इसके विपरीत जो कठोर वृक्ष झुकना नहीं जानते, तूफान के साथ समझौता नही कर सकते, वह सदा गिरते और टूटते रहते हैं।

कोई आपत्ति इतनी निर्दयी नहीं होती कि आप उसके साथ

समझौता करें और वह समझौते के लिए तैयार न हो। मरुस्थलों मे ऊँटों पर जाने वाले काफिले जब विषैली हवा की लपेट में आ जाते हैं तो तुरन्त मुंह के बल लेट जाते हैं। बड़े-बड़े तूफान उनके ऊपर से निकल जाते है। और वह हँसते-खेलते अपने मार्ग पर अग्रसर होते हैं। यह समझौता ही है जो उनके प्राणों की रक्षा करता है और उन्हें बहुत लम्बी और भयानक यात्रा पर जाने का साहस प्रदान करता है।

जब कोई आपत्ति आए तो आप भी इन मरूभूमि के सांडनी सवारों की भांति उसकी गोदी में लेट जाएँ। जब भी कोई कष्ट या दुख सामने आए, उससे हाथ मिलाएं, उससे प्यार करें और अपने बे-शिकायत मन में उसे स्थान दें। वह आपको अपना मित्र समझकर अपनी क्रूरता को कम कर देगा। और आपको कोई अप्रिय प्रभाव देने की बजाए एक प्रिय स्मृति छोड़ता जाएगा।

अपनी कठिनाइयों के साथ समझौता कीजिए।

अतिथि के कर्त्तव्य

अतिथि का व्यवहार कैसा होना चाहिए, उसके क्या क्या कर्त्तव्य हैं ?

अच्छे अतिथि का सर्वोत्तम गुण यह है कि वह आतिथेय के निमन्त्रण पर ही उसके घर जाएगा। यदि बिना निमन्त्रण के जाएगा तो अपने आने की सूचना पहले से दे देगा। और यह सूचना अरो नहीं होगी। जैसे यह कहना, कि "मैं एक सप्ताह के अंदर अंदर आप के घर आऊंगा।" वरन् वह स्पष्ट बताएगा कि 'मैं ४ जुलाई को तीसरे पहर आप के पास आ रहा हूँ।' और यदि उसे आशा हो कि आतिथेय स्वागत के लिए स्टेशन पर भी पहुंचेगा तो गाड़ी का समय भी बता देगा।

यदि आतिथेय सम्बन्धी, प्रेमी या मित्र न हो और साधारण जान पहचान का व्यक्ति हो या उसके साथ केवल नाम का ही परिचय हो और उसके बुलाए बिना उसके पास जाना पड़े। इसके साथ ही यह भी सम्भव हो कि वहाँ दो चार दिन ठहरना पड़ेगा तो सूचना मात्र पर्याप्त नहीं। शिष्टता यह है कि पहले से पत्र लिख कर उससे अनुमति प्राप्त कर ली जाए। अनुमति मिलने पर उसे अपने आने की ठीक ठीक सूचना दी जाए। यदि कोई व्यक्ति किसी अपरिचित के घर बिना निमन्त्रण, बिना अनुमति प्राप्त किए और बिना सूचना दिए चला जाए तो उस का बटोहियों के योग्य सत्कार तो हो सकता है। उसे अपने आप को 'अतिथि सत्कार' का अधिकारी नहीं समझना चाहिए। यह दूसरी बात है कि घर का मालिक अत्याधिक सज्जन पुरुष हो और उसे बटोही न समझ कर अतिथि मान ले और उसका वैसा ही सत्कार करे।

अतिथि के बिना सूचना दिए और कुसमय आ टपकने का

अनुभव हम सब को कभी न कभी हुआ होगा। यह अनुभव साधारणतया प्रिय नहीं होता। अतिथि का बिना सूचना दिए आ जाना तो किसी हद तक सहन किया जा सकता है परन्तु कुसमय पर आने वाले अतिथि से जो आत्मिक कष्ट और मानसिक वेदना होती है वह बड़ी देर तक याद रहती है। भारतीय जीवन मे ऐसे उदाहरण बहुत मिलते हैं जब अतिथि रात्रि के दो बजे आकर द्वार खटखटाना शुरू कर देता है। इस से न केवल अतिथेय और उसके घर वाले ही उसके अचानक आ जाने की आपत्ति का शिकार होते हैं वरन् उनके पड़ोसियों की मीठी नींद का आनंद भी जाता रहता है। यदि अतिथि एक से अधिक हों और अपने बाल बच्चों सहित आए हों तो घर वालों को और भी अधिक कठिनाई होती है। विशेषकर तब जब उसको घर के किसी व्यक्ति के नीचे से चादर निकाल कर किसी की दरी लेकर किसी का तकिया खेंचकर और एक बच्चे को उठाकर दूसरे के पास लिटा कर अतिथि के बिस्तर इत्यादि का प्रबन्ध करना पड़े।

उसको परेशानी और भी बढ़ जातो है जब अतिथि से पूछने पर पता लगता है कि उसको अभी खाना भी खाना है। बची खुची सब्जी दाल और रोटी पड़ी हो तो अच्छा है, नहीं तो उसी समय चूल्हा जलाइये, आटा गूंधिये, और आलू दाल जो मिल सके, पका कर अतिथि के सामने रखिए। आखिर वह अतिथि और आप घर वाले आपको कष्ट होता है तो पड़ा हो। अतिथि सत्कार आपका धर्म है। और आपको धर्म की उपेक्षा करने का कोई अधिकार नहीं।

संसार के किसी भी सभ्य देश के लोग अतिथियों के हाथों इतने दुखी नहीं होते जितने पूर्वीय लोग शताब्दियों से होते चले आए हैं और न जाने कब तक यही अवस्था चलती रहेगी। पश्चिमी देशों के लोग अतिथेय के लिए कभी कष्ट का कारण नहीं बनते।

वह सदा यह ध्यान रखते हैं कि किसी के घर बिना सूचना दिए न जाएँ और यथा सम्भव बेवक्त भी न हों। यदि बेवक्त जाना भी पड़े तो खाना खा कर जाएँ। रात्रि के समय किसी को खाना तैयार करने के लिए कहना बहुत बुरी बात है। वह लोग दिन के समय भी यदि किसी के घर खाने के समय के बाद पहुँचेंगे; तो न ही आतिथेय से इस बात की अपेक्षा रखेंगे कि वह उन से खाने के बारे मे पूछे और न स्वयं ही उसे खाना तैयार करने का कष्ट उठाने देंगे। यदि किसी को ध्यान हो कि वह किसी के घर खाने के समय से आध घण्टा पीछे पहुँचेगा तो वह होटल से खाना खाकर ही उसके घर जाएगा।

परन्तु कोई नियम ऐसा नहीं जिस मे अपवाद न हो। कई अवस्थाओं मे सूचना देने का अवसर ही नहीं मिलता। अचानक भेंट हो जाती है। ऐसा भी होता है कि अतिथि और आतिथेय का सम्बन्ध बहुत गहरा होता है। इतना गहरा कि अतिथि का बिना सूचना के आ जाना सूचना देकर आने से भी अधिक आनन्दप्रद होता है। कुछ प्रिय जनों के विषय मे यह आकांक्षा सी बनी रहती है। काश! वह अचानक ही आ जाएँ! उनके बेवक्त आने से नींद का उचाट होना नींद से भी अधिक सुखदाई होता है। उनके लिए जो भी कष्ट उठाया जाए, हार्दिक शांति प्रदान करता है। प्रेम के संसार में रस्मे और बनावटे नहीं होतीं। उन्हें साधारण कसौटी पर नहीं परखा जा सकता।

अतिथि को चाहिए कि आतिथेय के लिए कष्ट का कारण न बने। आनन्द दायक बने। उसे कई छोटी-छोटी बातों का पूरा ध्यान रखना चाहिए। सब से पहली बात यह है कि आतिथेय के खाली और काम के समय पर इस तरह न आ जाए कि वह अपने दैनिक कार्य-क्रम मे बाधा या हस्तक्षेप अनुभव करे। यथा सम्भव अपना स्वभाव आतिथेय के स्वभाव के अनुसार ढालना

चाहिए। जैसे यदि आतिथेय और उनका परिवार सन्ध्या होते ही खाना खा लेते हों तो उसे भी प्रसन्नता पूर्वक उनके साथ ही खा लेना चाहिए चाहे उसका अपना स्वभाव इससे पृथक हो। ऐसा नहीं होना चाहिए कि वह सायंकाल लम्बी सैर के लिए निकल जाए और घर वाले उसकी प्रतीक्षा में बैठे रहें। इसी प्रकार उसे अपने अतिथि के स्वभाव की अन्य बातों का परिचय पाकर अपने आपको उनके अनुसरण के लिए तैयार कर लेना चाहिए। उसका यह कर्तव्य है कि वह आतिथेय के सोने, जागने, सैर करने, नहाने धोने, नाश्ता करने, काम पर जाने और वापस आने के समय का पूरा-पूरा ध्यान रखे। अपने अतिथि होने के कारण कोई ऐसा विशेष सुख न मांगे जिससे आतिथेय को कष्ट हो।

आतिथेय तो यह पूछ सकता है कि अतिथि को कौन सा खाना पसन्द है। परन्तु अतिथि को स्वयं किसी विशेष खाने की मांग नहीं करनी चाहिए। मांग करना होटलों में ही अच्छा लगता है। आतिथेय को कोई विशेष खाना तैयार करने के लिए कहना निःसंकोच होना नहीं छिछोरापन है। इससे बचना चाहिए। इसके विपरीत एक अच्छा अतिथि संकेत द्वारा भी यह नहीं जतला सकता कि उसका प्रिय भोजन कौन-सा है। जो कुछ और जैसा कुछ आतिथेय तैयार करके उसके सामने लाए वह प्रसन्नता पूर्वक खाले। यदि खाने में कोई दोष हो, नमक मिर्च उसकी अपनी आदत के अनुसार कम या अधिक हो या खाना उसके अपने घर से घटिया हो तो वह आतिथेय को यह बताकर लज्जित नहीं करता कि खाना उसे पसन्द नहीं। यदि कोई ऐसा करता है तो वह अच्छा अतिथि नहीं।

जब आतिथेय कहता है, "किसी बात में संकोच करने की आवश्यकता नहीं। इस घर को अपना ही घर समझिए।" तो इसका अर्थ कदापि यह नहीं होता कि अतिथि सचमुच ही घर

का स्वामी बन गया है। यह बात बहुत बुरी है कि आतिथेय से पूछे बिना उसकी अलमारी खोल ली जाए और उसमें से कोई वस्तु निकालकर प्रयोग मे लाई जाए। सम्भव है उस अलमारी में कोई ऐसी वस्तु हो जिसे वह गुप्त रखना चाहता हो और अतिथि के ज्ञान से बाहर रखना चाहता हो। बहुत से मूर्ख अतिथि अपने आतिथेय के घर के सामान को इस तरह देखते, टटोलते और उथल-पुथल करते हैं जैसे वह अतिथि नहीं पुलिस के सिपाही हैं और किसी चोरी का पता लगाने आए है। वह प्रत्येक वस्तु के विषय मे विभिन्न प्रश्न करते है। मूल्य पूछते है और पूछते हैं कि वह कहां से खरीदी गई थी। यदि आतिथेय उत्तर दे कि मैंने गत वर्ष इसे काश्मीर से खरीदा था तो तुरन्त कह देंगे, इन गर्मियों में यदि आप जाएँ तो मेरे लिये भी अवश्य खरीद लाएँ।

कुछ अतिथि दूसरे के घर को सैनेटोरियम समझ लेते हैं दिन भर बिस्तर पर पड़े रहते है या अन्दर घुसे रहते हैं। आतिथेय और उसके परिवार को अकेले बैठने का अवसर ही नहीं देते। घर वालों को अपनी निजी समस्याओं के विषय में अलग होकर विचार विमर्श करने का अवसर ही नहीं मिलता। अतिथि के होते हुए उन्हें कई बार दूसरे कमरे में जाकर खुसर-फुसर करनी पड़ती है। अतिथि वाचनालय में नहीं बैठता और न ही सैर इत्यादि के लिए बाहर निकलता है। ऐसे व्यक्ति से घर वाले बहुत शीघ्र ऊब जाते है। मन ही मन बोझ सा महसूस करने लगते हैं। अच्छा अतिथि आतिथेय के अकेलेपन का और उसकी निजी समस्याओं का उदारता पूर्वक आदर करता है। आतिथेय काम से खाली हो तो वह अपनी विचारशीलता से काम लेकर स्वयं ही मनोरंजन के लिए बाहर निकल जाता है ताकि उसकी अनुपस्थिति में आतिथेय आसानी और आज़ादी के साथ अपने घरेलू मामलों को सुलझा सके।

यह भी उचित नहीं कि अतिथि जिस घर में रहता हो उस घर का कोई काम करना अनादर या अपमान समझे। उत्तम और प्रिय अतिथि वह है जो घर के कामों में आतिथेय का हाथ बटाने के लिए सदा तैयार रहे। अतिथि यदि स्त्री हो तो उसे चाहिये कि वह अपनी आतिथेय की खाना आदि बनाने में सहायता करे। उसके नन्हे को बहलाये; कपड़े धोने और घर की सफाई में उसका हाथ बटाए। यदि पुरुष हो तो पुरुष के कामों में सहायता देनी चाहिये। जैसे आवश्यकता पड़ने पर बाजार से सामग्री लाने में कोई बुराई नहीं। यह बाते दिखाई तो देती है साधारण परन्तु वास्तविकता यह है कि इन्हीं छोटी-छोटी बातों से प्रेम और सहानुभूति के सम्बन्ध दृढ़ होते हैं।

कई वर्ष पहले की बात है। मैं नवयुवक विद्यार्थी ही था। मुझे अपने एक सम्बन्धी के घर जाने का अवसर मिला। उस समय मेरा विचार था कि किसी के घर जाकर कोई काम करना अतिथि के लिए आदर की बात नहीं। आतिथेय ने मुझे एक काम कहा कि " इस भैंस को कूंए पर ले जाकर पानी पिला लाओ।" मुझे इन शब्दों से बड़ा दुःख हुआ। मैं ने बड़ी कठिनाई से अपना रोष छुपाया और मौन रहकर उनका कहा मानने से इन्कार कर दिया। इतना ही नहीं, मैं उसी दिन घर लौट आया। पूरे पन्द्रह वर्ष तक मुझे वह शब्द चुभते रहे। मैं फिर कभी उन के घर नहीं गया।

अनुभव ने मुझे सिखाया है कि मेरा वह व्यवहार गलत था, मेरा रोष व्यर्थ था और मैं ने अकारण ही इतनी देर तक एक कल्पित वेदना का बोझ उठाये रखा। मेरे लिए अच्छा यही था कि मैं प्रसन्नता पूर्वक उसका बताया हुआ काम कर देता और जितने दिन उसके घर रहता, घर के काम काज में पूरी दिलचस्पी लेता।

स्वयं स्फूर्ति अतिथि का बड़ा प्रिय गुण है। आतिथेय की यह अपेक्षा उचित है कि अतिथि उसके घर में परनिर्भर होकर नहीं रहेगा और अपनी आवश्यकताएं यथा सम्भव स्वयं ही पूरी कर लेगा। अतिथि को बच्चों की सी विवशता नहीं दिखानी चाहिए। उदाहरणार्थ यह बात कैसी हास्यास्पद है कि खाना खाने से पहले और पीछे हर बार आतिथेय ही हाथ धुलाए। वह अपना कोई भी काम अपने आप न कर सके। यहाँ तक कि आतिथेय ही उसकी अंगुली पकड़ कर उसे सैर के लिए ले जाए। उसे अपने विशिष्ट स्वभाव की ओर स्वयं ध्यान देना चाहिये। आतिथेय से यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि जिन वस्तुओं का वह स्वयं आदी नहीं उन की भी ठीक ठीक व्यवस्था कर सकेगा। छोटी २ चीजें यदि अतिथि अपने घर ही से साथ ले जाए तो अच्छा है। कंघी, तौलिया, टूथपेस्ट और ब्रश इत्यादि दूसरे के घर से लेकर इस्तेमाल करना सभ्य समाज में अच्छा नहीं समझा जाता।

आतिथेय के घर में किसी अन्य व्यक्ति को विशेषकर किसी अपरिचित व्यक्ति को बुलाना बहुत बुरा है। सम्भव है वह व्यक्ति उसे पसन्द न आए। यह भी सम्भव है कि आतिथेय उसको खिलाना बोझ समझे। एक अवस्था में पहले अतिथि का आदर भी कम हो जाएगा इससे आतिथेय को प्रसन्नता नहीं होगी। वह असुविधा और संकोच में फंस जाएगा। अतिथि और आतिथेय दोनों का आनन्द नष्ट हो जाएगा।

जिस व्यक्ति के साथ आतिथेय के सम्बन्ध अच्छे न हो, अतिथि को न तो उसका निमन्त्रण स्वीकार करना चाहिए न उसे निमन्त्रण देना चाहिए। उसके घर जाकर अधिक मेल जोल भी नहीं बढ़ाना चाहिए। रस्मी तौर पर कुशल क्षेम पूछने आदि के अतिरिक्त कोई सम्बन्ध नहीं रखना चाहिए। इस नियम का अनुसरण बहुत आवश्यक है। किसी प्रिय से प्रिय मित्र के लिए भी इसे नहीं

तोड़ना चाहिए। अतिथि जिसके घर ठहरा हो उसीका अतिथि बनकर रहे। कोई अन्य व्यक्ति यदि आतिथेय के विरुद्ध कोई शिकायत करे या परस्पर मनोमालिन्य की बाते करे तो कोई दिलचस्पी नहीं लेनी चाहिए। और न ही यह शिकायते आतिथेय के कानों तक पहुंचानी चाहिए। अतिथि को अपना यह कर्तव्य कभी भी नहीं भूलना चाहिए कि उसकी किसी क्रिया से आतिथेय को किसी प्रकार का कष्ट न हो। उसकी प्रसन्नता को प्राथमिकता देनी चाहिए।

किसी के घर अतिथि बन कर कितने दिन ठहरना चाहिए? इस प्रश्न का दो टूक उत्तर देना कठिन है। दोनों के परस्पर संबंध ही इसका ठीक उत्तर दे सकते है। लाबोलाये (laboulaye) का कहना है:—

The first day, a guest; the second day, a burden; the third day, a pest.

अर्थात् पहले दिन अतिथि, दूसरे दिन बोझ और तीसरे दिन बला।

यह उक्ति प्रायः सत्य ही है। परन्तु ऐसी नहीं कि प्रत्येक अतिथि पर ही पूरी उतर सके। अतिथि और आतिथेय के सम्बन्ध इतने निकट भी हो सकते है कि तीन दिन तो क्या तीन सप्ताह मे भी सत्कार की अभिलाषा पूर्ण न हो। इस के विपरीत यदि कोई व्यक्ति आमन्त्रण, प्रेम और अभिलाषा के बिना ही आए दिन किसी का अतिथि बन जाए तो असम्भव नही यदि आतिथेय को उसका तीन घण्टे ठहरना भी खटकटने लगे। ऐसे व्यक्ति का आदर आने के लिए नहीं जाने के लिए होता है।

जिस प्रकार यह आवश्यक है कि अतिथि अपने आने की सूचना पहले से दे, उसी प्रकार यह भी आवश्यक है कि वह अपने जाने के विषय में भी पहले से सूचित कर दे। अचानक उठकर

चल देने से आतिथेय विस्मित हो जाता है और कई बार उसको बड़ी परेशानी भी होती है। सम्भव है उसको यह संदेह हो जाए कि आप को उसका आदर सत्कार का ढंग पसन्द नहीं आया। यदि उसको पहले से सूचित कर दिया जाएगा तो वह आसानी से आप को विदा करने के लिए तैय्यार हो सकेगा।

यदि अतिथि यह निश्चय कर ले कि वह अमुक दिन अवश्य ही विदा हो जाएगा तो उसे मौसिम का खराबी इत्यादि विशेष कठिनाई न आने की अवस्था मे उस दिन अवश्य ही चले जाना चाहिए। कुछ अतिथि बार बार अपना निश्चय बदलते है। आतिथेय को उनका यह व्यवहार अच्छा नही लगेगा।

विदा होने से पहले उसको चाहिए कि आतिथेय की वह सभी वस्तुएं जिन को वह इस्तेमाल करता रहा है अपने अपने स्थान पर रख दे। जो चीज़े उसको सोपनी हों, उसे सोंप दे। अपने बक्स, विस्तर, सूटकेस को भली भॉति जाँच ले कि आतिथेय की कोई वस्तु साथ न चली जाए। अपनी सभी चीज़ें अच्छी तरह सम्भाल ले। कोई चीज़ रह न जाए। यदि रह जाएगी तो आतिथेय के लिए परेशानी का कारण बनेगी। वह उसे सम्भालता फिरेगा और चिन्तित रहेगा कि न जाने अतिथि को इसकी कितनी आवश्यकता होगी। उसे सोचना पड़ेगा कि उसे किस प्रकार आप तक पहुंचाया जाए। जो अतिथि अपने पीछे आतिथेय के पास कोई चिन्ता या परेशानी छोड़ जाता है, वह अच्छा अतिथि नही हो सकता।

विदा होते समय उसकी मुख मुद्रा, उसकी आंखों और उस के हाथ मिलाने के ढग से यह प्रकट होना चाहिये कि वह अपने मन मे आतिथेय की सेवा और सत्कार के लिए आदर का भाव लेकर जा रहा है। और वह अपने आपको अब उसके अधिक निकट समझ रहा है। धन्यवाद करने की आवश्यकता नहीं, परन्तु

प्रसन्नता अवश्य प्रकट करनी चाहिए। कहा जा सकता है "आप के पास मेरा समय बहुत आनन्द पूर्वक कटा।" इतना ही नहीं घर पहुंच कर आतिथेय को पत्र लिखना चाहिए। ऐसा पत्र जिससे उसको संतोष हो जाये कि उसके अतिथि को उसके घर आकर वस्तुतः ही आनन्द मिला।

अतिथि-सत्कार

अच्छा आतिथेय कौन है ?

अच्छा आतिथेय वह है जो अपने अतिथि का उत्साह और मुस्कान पूर्ण मुख के साथ स्वागत करे। मुख मुद्रा से ही उत्सुकता प्रकट करना पर्याप्त नहीं, मन मे भी उत्साह होना चाहिए। यदि अतिथि के साथ उसका सम्बन्ध बड़े प्रेम और आदर का हो या वह पहली बार शहर में आ रहा हो तो आतिथेय को चाहिए कि उसके स्वागत के लिए स्टेशन तक चला जाए।

बुद्धिमान् लोगों ने आडम्बर को बहुत बुरा कहा है। यह है भी वास्तव मे निंदनीय। इसमे संदेह नहीं कि अतिथि का सत्कार करना कर्तव्य है परन्तु चादर देखकर ही पांव फैलाने चाहिएं। अतिथि के खान पान पर यदि सामर्थ्य से अधिक व्यय किया जाएगा तो इससे अपने आपको ही नहीं, अतिथि को भी दुख होगा। क्योंकि आडम्बर छुप नहीं रहता। यह भूल कभी नहीं करनी चाहिए कि अपने परिवार को तो दाल दलिया भी न मिलता हो और अतिथि के लिए पकवान बनाए जाएं।

सादी की 'दावते शीराज' की कहानी को कौन नहीं जानता ? उस कहानी मे बड़े योग्य ढंग से बताया गया है कि अतिथि सत्कार मे आडम्बर कदापि नहीं करना चाहिए। एक पुरानी उक्ति है—"अतिथि और मछली से तीन दिन के पश्चात् दुर्गन्ध आने लगती है।" मछली की दुर्गन्ध का कोई निदान नहीं परन्तु यदि हम चाहे कि अतिथि से दुर्गन्ध न आए तो हमारे लिए अनिवार्य है कि हम उसके लिए कोई आडम्बर न करें।

अतिथि की सुविधा का ध्यान रखा जाए। यह अतिथि सत्कार

का बड़ा महत्त्वपूर्ण नियम है। उसके साथ एक निर्जीव खिलौने जैसा व्यवहार न किया जाए जिसे चाहे तो अलमारी में रख दें और चाहें तो मेज़ पर। यह कभी न भूलना चाहिए कि वह केवल हमारा अतिथि ही नही, एक जीवित मनुष्य भी है। उसकी इच्छा, स्वतन्त्रता और उसकी सुविधाओं को इस प्रकार शृङ्खलाबद्ध नहीं करना चाहिए कि वह अपने आपको बंदी महसूस करने लगे वरन् उसे इतनी स्वतन्त्रता होनी चाहिए कि वह अपनी उचित इच्छाओं को बेरोक टोक पूरा कर सके। वह अपनी इच्छा के अनुसार जैसे चाहे नहाए, सोये. जागे या सैर इत्यादि के लिए निकल जाए। जब जी चाहे हमारे पास बैठे और जब इच्छा हो दूसरे कमरे में जा कर अध्ययन करने लगे। दूसरे शब्दों मे उसको ऐसा लगना चाहिए कि आतिथेय का घर उसका अपना घर है।

अतिथि को कभी किसी बात के लिए विवश न किया जाए। हमारे घरों में प्रथा है कि जब अतिथि खाने से हाथ हटा लेता है तो उसको और खाने के लिए कहा जाता है। वह बहुत कहता है कि मेरा पेट भर गया, और नहीं खा सकता, मगर हम उसकी एक नहीं सुनते। अपनी हठ जारी रखते है, अब जब कि हमारा समाज उन्नति की ओर अग्रसर हो रहा है, हमे इस प्रथा को समाप्त कर देना चाहिए। आतिथेय का काम केवल इतना ही होना चाहिए कि अतिथि के लिए खाना मेज़ पर लगा दे। अतिथि ने कम खाया है या अधिक, इस बात का अनुमान लगाना उसका काम नहो। अतिथि अपनी भूख और अपने पेट की गुंजायश का हम से बेहतर अनुमान कर सकता है। यदि वह संकोच करता है और पूरा नहीं खाता तो उसे संकोच का दण्ड मिलना चाहिए।

अतिथि सत्कार मे इस बात का ध्यान रखना आवश्यक नहीं कि अतिथि क्या खाना पसन्द करता है और क्या पसन्द नहीं करता। ऐसे उदाहरणों की कमी नहीं कि घर वाले किसी

चीज़ को बड़े परिश्रम और शौक़ से तैय्यार करते है परन्तु अतिथि उसे प्रसन्न होकर नही खाता या खाने से इन्कार ही कर देता है। एक व्यक्ति ने अपना अनुभव बताया कि मैं ने अपने अतिथि के लिए विशेष तौर पर मछली मंगवाई और बड़े उत्साह से पकवा कर उसके सामने रखी। अतिथि ने बताया कि उसने कभी मछली खाई ही नहीं थी। मुझे बड़ा दुख हुआ। एक तो मछली बड़े परिश्रम से मिली थी फिर उसे पकाने पर बड़ा खर्च आया था। समय भी नष्ट हुआ और परिश्रम भी। प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार के पछताने को असम्भव बना सकता है यदि वह अतिथि से यह पूछ लिया करे कि वह अमुक खाना खा लेगा या उसके लिए कुछ और बनाया जाए।

अतिथि सत्कार में प्रायः दो ही बातों का ध्यान रखा जाता है। अतिथि का खाना अच्छा हो और उसका बिस्तर स्वच्छ हो। परन्तु यह एक ऐसी विस्तृत कला है कि रोटी और बिस्तर की उत्तम व्यवस्था आतिथेय के संतोष के लिए पर्याप्त नहीं। वह प्रयत्न करेगा कि उसका सत्कार प्रत्येक दृष्टि से पूर्ण हो। वह अपना कर्त्तव्य समझेगा कि जहां तक सम्भव हो सके अतिथि की मानसिक एवं आत्मिक आवश्यकताओं को भी पूरा किया जाए। यदि अतिथि सैर इत्यादि करने का स्वभाव रखता होगा तो वह प्रयत्न करेगा कि आस पास के बाग़ों, खेल के मैदानों, क्लबों, और एतिहासिक इमारतों से उसका परिचय करा दें। यदि वह अध्ययन में रुचि रखता होगा तो उसके लिए पत्र-पत्रिकाओं और पुस्तकों की व्यवस्था करेगा या उसे किसी पुस्तकालय से लाभ उठाने का अवसर उपलब्ध कराएगा। वह शान्त प्रिय होगा और बच्चों से दिलचस्पी न लेता होगा तो घर के वातावरण को अधिक शांतिपूर्ण बनाने का प्रयत्न करेगा और बच्चों को उसके कमरे में जाने से रोक देगा। यदि अतिथि को

गपशप और लतीफे सुनने सुनाने में दिलचस्पी होगी तो अच्छा आतिथेय उसकी इस इच्छा की भी अवहेलना नहीं करेगा। संक्षेप में कहा जा सकता है कि अतिथि की रुचि अरुचि का ध्यान रखे बिना सत्कार नहीं होता।

यदि किसी विशेष अवसर पर एक से अधिक अतिथियों को बुलाया जाय तो यथा सम्भव इस बात का ध्यान रखना चाहिये कि सभी अतिथि समान स्तर के हों। जिन दो व्यक्तियों का परस्पर सम्बन्ध अच्छा न हो, उनको एक साथ बुलाना सब कुछ बे-मज़ा बना देता है। इसी प्रकार उन लोगों को एक साथ बुलाना अच्छा नहीं जो धार्मिक विश्वासों के बारे में परस्पर उदारता से काम न ले सकते हों। यदि किसी सहभोज में उच्च शिक्षा प्राप्त लोगों के साथ अशिक्षित, उत्साही धर्म विश्वासियों के साथ धर्म हीन और नास्तिक, लखपति धनियों के साथ निर्धन अतिथि एकत्र हो जाएंगे तो वह भोज सर्वोत्तम खाद्य पदार्थों के होने पर भी असफल रहेगा। सम्भव है कोई अवांछित विवाद चल पड़े, कोई धनवान् अपने धन के घमण्ड मे किसी निर्धन का निरादर कर दे या कोई शिक्षित व्यक्ति किसी अशिक्षित के साथ बैठना पसन्द न करे। ऐसी बातों का परिणाम कभी अच्छा नहीं होता।

एक सहभोज मे मैंने ऐसे ही दुखदाई दृश्य देखे हैं। एक व्यवहारप्रिय व्यक्ति के साथ एक बच्चे को बिठा दिया गया। एक अच्छे कपड़ों वाले सज्जन के साथ एक ऐसे व्यक्ति को बिठा दिया गया जिसका लिबास बहुत गंदा था और जो शक्ल सूरत से गवांर दिखाई पड़ता था। एक प्रसिद्ध साहित्यकार के

साथ एक अन्धे[1] को बिठा दिया गया। खाना खा चुकने के पश्चात मुझे पूर्वोक्त व्यक्ति ने बताया कि उसे भोज मे कोई आनन्द नहीं आया।

आतिथेय का कर्तव्य है कि वह सहभोज के समय सभी अतिथियों को सलीके के साथ उचित स्थान पर बिठाये। धनिकों को धनवानों के साथ, निर्धनों को निर्धनों के साथ, बच्चों को बच्चों के साथ और बड़ी आयु वालों को उनके समायु लोगों के साथ। जिन लोगों के परस्पर विवाद मे उलझ जाने का भय हो या जिनका सम्बन्ध आपस में अच्छा न हो उन्हें एक दूसरे से दूर और जिनके आपसी सम्बन्ध अच्छे हों उनको एक दूसरे के निकट बिठाना चाहिये।

अतिथि का मनोरंजन भी आतिथेय का एक कर्तव्य है। अगर उससे कोई भूल हो जाए, कोई हानि हो जाए या कोई वस्तु टूट जाय तो माथे पर बल नहीं देना चाहिये। उसकी किसी भी क्रिया पर विस्मय या सशय प्रकट न किया जाय। उसके समक्ष पुराने मनोमालिन्य और शिकायतों के दफ्तर न खोले जाएं। उसे अपनी निजी परेशानियों और कठिनाइयों की घटनाएं न सुनाई जाएं, उसके लिये जो कुछ भी मंगवाया जाए उसके मंहगे सस्ते भाव का कदापि उल्लेख नहीं करना चाहिए। उसके मुंह पर उसकी त्रुटियों का जिक्र करके उसे लज्जित न किया जाए। आतिथेय के किसी भी काम से संकीर्णता प्रकट नहीं होनी चाहिए। अतिथि यह सोचने पर आबद्ध न हो कि उसने आपका निमन्त्रण स्वीकार करके भूल की।

---

१. अन्धा व्यक्ति हमारी सहानुभूति एवं सहायता का पात्र है। परन्तु वह खाना खाते समय सभी नियमो का पालन नही कर सकता। इसलिये बहुत कम लोग किसी अन्धे के साथ बैठ कर खाना पसंद करते है। इसे घमण्ड नही समझना चाहिये। यह तो मानव स्वभाव है।

अतिथि आतिथेय के घर में केवल खाने पीने का अभिलाषी नहीं होता। उसे वह सहूलतें नहीं भातीं जिनमें उसकी हार्दिक इच्छा मिली हुई न हो। उसकी बड़ी आकांक्षा होती है कि आतिथेय व्यक्तिगत तौर पर उसमें दिलचस्पी ले। यदि आतिथेय उसको अपने ध्यान का केन्द्र नहीं बनाता और उसमें दिलचस्पी नहीं लेता तो अतिथि अपने आपको महत्वहीन समझने लगेगा। प्रत्येक आतिथेय को यह समझ लेना चाहिए कि उसकी अवहेलना से अधिक कोई भी वस्तु अतिथि के लिये अपमान पूर्ण नहीं हो सकती।

उस व्यक्ति की मानवता में संदेह करना गलत नहीं जो अपने साधारण कामों को अतिथि की प्रसन्नता और मनोरंजन से अधिक महत्त्वपूर्ण समझता है। अतिथि अकेला कमरे में बैठा रहता है। घण्टों बीत जाते हैं। वह उसके लिये समय निकालने की बजाए अपने मित्रों के साथ उनकी खेलों में व्यस्त रहता है। अतिथि से उसके विषय में कोई भी परामर्श न लेकर हर मामले में अपना मत उस पर ठोंस देता है। कोई भी सभ्य आतिथेय अपने अतिथि के साथ उपेक्षापूर्ण व्यवहार नहीं करेगा। वह जितना समय उसके मनोरंजन के लिये निकाल सकेगा, निकालेगा। वह प्रयत्न करेगा कि उसका समय किसी ऐसे मनोविनोद में न लगे जिसमें उसका अतिथि सम्मिलित न हो सके। अतिथि के घर में होते हुए यदि कहीं से निमन्त्रण आए तो तभी जाएगा यदि उसके अतिथि को भी वहां बुलाया गया हो। अगर ऐसा नहीं है तो तुरंत इन्कार कर देगा। वह समय समय पर अतिथि की आवश्यकताओं के बारे में पूछता रहेगा और उससे परामर्श लेता रहेगा। जैसे "आप ठण्डे पानी से नहाना पसन्द करते हैं या गरम से।" "आप बरामदे में सोयेंगे या अन्दर।"

"यदि आप रात को खाना खाकर सैर करते है तो मैं आपके साथ चल सकता हूँ।"

"आप अल्पाहार कब करते हैं ?"

"यदि अमुक वस्तु पका ली जाए तो आप खा लेंगे क्या ?" इत्यादि—

कई घरों मे अतिथि के आने पर भगदड़ सी मच जाती है। कोई रसोई में घुस जाता है तो कोई बाजार की ओर भागता है। कभी बच्चों को शोर मचाने के लिए कोसा जाता है और कभी नौकर की काम में देरी करने के लिए खबर ली जाती है। कभी-कभी पति पत्नी का झगड़ा शुरू हो जाता है। उनसे पूछा जाए कि इस असाधारण घबराहट और भगदड़ का अतिथि के आने से क्या सम्बन्ध है ? यह असीम असभ्यता है कि अतिथि के सामने घर भर आपे से बाहर हो जाए। एक दूसरे को कोसने का यह कौन सा अवसर है ? यदि ध्यान दिया जाए तो इस असभ्य व्यवहार का मुख्य कारण यह है कि हम अतिथि सत्कार के कार्य को घर के सभी लोगों में ठीक प्रकार बांटते नहीं। अतिथि के आने से पहले ही कुटुम्ब के लोगों को उनके काम सौंप देने चाहिए। उदाहरणार्थ माता जी और सुशीला खाना तैय्यार करेगी। पान, सिग्रेट शर्बत और चाय आदि की व्यवस्था शम्भू करेगा। प्रेम अतिथि का कमरा ठीक रखेगा, उसके लिए बिस्तर करेगा और नहाने धोने की व्यवस्था करेगा। पिता जी उसे खाना खिलाएंगे तथा उसके मनोरंजन और अध्ययन की व्यवस्था का ध्यान रखेंगे। इत्यादि। कार्य वितरण का परिणाम बहुत अच्छा निकलेगा और सत्कार भली भांति हो सकेगा।

अतिथि-सत्कार मे समस्त कुटुम्ब को शामिल होना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को हंसी खुशी अपना काम करना चाहिए। प्रायः देखा जाता है कि यदि अतिथि पति का मित्र हो तो पत्नी उसकी

सेवा को अपने लिए बोझ समझती है। और यदि वह पत्नी की सहेली या उसका कोई सम्बन्धी हो तो पति उसकी अवहेलना करता है। बेटे का अतिथि आए तो माता पिता उसके आदर सत्कार को अनावश्यक समझते हैं। यह व्यवहार सर्वथा गलत है। इससे कुटुम्ब के परस्पर सम्बन्धों पर चोट पड़ती है। घर के किसी एक व्यक्ति का अतिथि वास्तव में सारे घर का अतिथि है। उसे सारे घर की ओर से समान आदर और उत्सुकता मिलनी चाहिए। यदि ऐसा नहीं होगा तो वह एक दूसरे से दूर होने के अतिरिक्त अ तिथि के मन में भी कोई स्थान नहीं पा सकेंगे। उस पर बड़ा बुरा प्रभाव पड़ेगा।

अतिथि को विदा करना भी बड़ी कला है। आतिथेय के व्यवहार में आदर, सत्कार, सुहृदयता और उत्सुकता होनी चाहिए। अतिथि को यह अनुमान हो जाए कि उसका आना और ठहरना आतिथेय के लिए प्रसन्नता का कारण बना है। वह विदा होते समय उसके मुख से एक प्रश्न पढ सके—कौन सा प्रश्न ?

"इतने शीघ्र ?"

यदि जाते समय वह आपकी मुद्रा से यह प्रश्न नहीं भांप सकता तो आपका सत्कार अधूरा रहा है।

व्यवसाय

कली खिल कर अभी पुष्प नहीं बनी होती परन्तु खिलकर वह किस प्रकार का रंग देगा और किस प्रकार की महक, यह प्रकृति पहले से ही उसके अन्दर भर देती है।

हम नहीं जानते कि हमारा बच्चा बड़ा होकर क्या बनेगा। परन्तु उसके स्वभाव में ऐसा गुण रखा जा चुका है जैसा कि कलि के अन्दर। एक दार्शनिक के कथनानुसार उसे एक आवाज सुनाई देती है जिसे हम नहीं सुन सकते। वह उसे कहती है, "तू यहाँ मत ठहर"। उसे एक हाथ सूझता है जो हमारी आँखों से ओझल होता है और उसका पथदर्शन करता है।

जिस प्रकार हमारे मुख भिन्न होते हैं, वैसे ही हमारे मस्तिष्क और स्वभाव भिन्न होते हैं। कुछ बच्चे स्वभावतः ही कलों में अधिक दिलचस्पी लेते हैं। जहाँ कहीं उन्हें कोई मशीन, कोई इंजन या कोई कल दिखाई दे जाए, वह बड़े ध्यान से उसे देखते हैं। मशीन का कोई यन्त्र, ताला या घड़ी उनके हाथ पड़ जाए तो वह उसके खोलने मोड़ने और समझने को ही अपना काम बना लेंगे। इसके विपरीत कई बच्चे मशीनों या कलों को देखना भी पसन्द नहीं करते। उनको खेल कूद, सैर सपाटे और ड्रिल से प्रेम होता है। प्रकृति उनको संसार में सैनिक गुण देख कर भेजती है। कुछ बच्चे पुस्तकों या ज्ञान की बातों के अतिरिक्त किसी भी बात में दिलचस्पी नहीं लेते। अर्थात् सब की अपनी-अपनी अलग रुचि होती है। अतः जब बच्चों को कोई कला या कार्य सिखाने का समय आए तो उनके स्वाभाविक झुकाव को ध्यान में रखना बहुत आवश्यक है। जब तक वह पेशा शुरू न किया जाए जो

स्वभाव के अनुसार हो, सफलता सम्भव नहीं।

प्रायः प्रत्येक बालक १२ या १४ वर्ष की आयु तक पहुँचते २ अपने स्वभाव को प्रकट कर देता है। उसकी क्रियाएं, स्वाभाविक झुकाव तथा उसके मानसिक विचारों का यदि अध्ययन किया जाए तो हमें वह रेखाएं दिखाई दे जाएंगी जो उसकी रुचि के पेशे की ओर संकेत कर रही होंगी। हमें स्पष्ट ज्ञान हो जाएगा कि वह क्या बनना चाहता है।

परन्तु दुर्भाग्य की बात यह है कि माता पिता और अध्यापक इन विशिष्ट झुकावों का अध्ययन ही नहीं करते। यही नहीं उनको इस बातका पता ही नहीं होता कि उनके अन्दर ऐसा कोई लक्षण है भी। माता पिता के सामने अपना ही ज्ञान और तर्क होता है और वह इसी के अनुसार बच्चे को शिक्षा दिलवाते हैं। फिर वह उसे जीवन के उस क्षेत्र मे कूदने पर विवश करते है जिस में वह स्वेच्छा से कभी न जाता। इस आतताई नेतृत्व के कारण अनेक नवयुवकों का जीवन दु.खी, असफल एवं असंतुष्ट है। अनेक नवयुवक अपने माता पिता के स्वार्थ का कटु परिणाम देख रहे हैं।

पेशे का ठीक या गलत चुनाव व्यक्तिगत मामला नहीं है। यदि सामूहिक जीवन को एक मशीन समझा जाए तो प्रत्येक व्यक्ति उसका एक यन्त्र होगा। स्पष्ट है कि प्रत्येक यन्त्र अपने उचित स्थान पर ही मशीन के काम के लिए लाभ दायक सिद्ध हो सकता है। यदि कोई यन्त्र गलत स्थान पर लगा दिया जाएगा तो उससे लाभ की बजाए हानि होगी। हमारे सामूहिक जीवन का सब से बड़ा दोष यह है कि उसके अधिकतर अंग अपने अपने ठिकाने पर नहीं रखे जाते। असफल दुकानदार, बदनाम वैद्य निराश और दुःखी अध्यापक तथा उत्साह विहीन कर्मचारी इसलिए दिखाई दे रहे हैं कि यौवन के द्वार पर पग रखते ही उनके माता पिता ने उनके

लिए जीवन यापन के जो वसीले उनको सुझाये वह स्वाभाविक तौर पर उनके योग्य न थे ; यह लोग स्वयं ही निराशा और बे दिली से अपने दिन पूरे नहीं कर रहे वरन् समाज के सामूहिक विकास मे भी बड़ी भारी रुकावट सिद्ध हो रहे है।

जो व्यक्ति अपने व्यवसाय के लिए अनुपयुक्त हो उसको अंग्रेजी की एक लोकोक्ति मे Square peg in a round hole कहा जाता है। अर्थात् जिस प्रकार गोल सूराख में चौकोर मेख ठीक नहीं बैठती और उसके आस पास खाली स्थान रह जाता है, उसी प्रकार उस व्यक्ति के जीवन में भी खालीपन पाया जाना आवश्यक है जिसको उचित उद्योग न मिला हो। उसके किसी काम में भी सौंदर्य, दिलचस्पी, व्यवस्था, एकाग्रता और परिश्रम नहीं होगा। वह अपनी कला या उद्योग के लिए उन्नति की बजाए अवन्नति का कारण बनेगा। प्रतिदिन की असफलता उसकी कमर तोड़ देगी। कोई भी व्यक्ति उसकी प्रशंसा नहीं कर सकेगा। वह कभी अपने भाग्य को कोसेगा और कभी संसार की उपेक्षा की शिकायत करेगा। यह निराशा जनक अवस्था उसकी नैतिकता पर प्रभाव डालेगी। उसका मानसिक संतुलन बना नहीं रह सकेगा।

इतिहास के पन्ने उलटिये और उन महानात्माओं के जीवन का अध्ययन कीजिए जो ख्याति के आकाश पर सूर्य के समान चमकी है। मुस्तफा कमाल को देखिये। प्रकृति उसे सैनिक बनाती है। वह स्कूल की साधारण शिक्षा समाप्त करके सीधा एक सैनिक शिक्षालय मे जाकर प्रविष्ट हो जाता है। बीस वर्ष की आयु तक पहुंचते २ सेना मे लैफटीनैंट का पद प्राप्त कर लेता है। अन्त में तुर्की के रोगी मनुष्य की रक्षा उसके हाथों होती है। फ्लौरैन्स नाईटिंगेल को देखिए जो बचपन ही में अपने बीमार पड़ोसियों की देखभाल द्वारा अपने जीवन का विशिष्ट कार्य प्रारम्भ कर देती है। और वही ससार भर मे नर्सिंग के आंदोलन का शिलान्यास करती

है। गैलीलियो के माता पिता उसे वैद्य बनाना चाहते हैं, मगर वह चोरी चोरी ज्योमैट्री की पुस्तकों का अध्ययन करता रहता है। वह एक असफल वैद्य बनने की बजाए प्रसिद्ध गणित शास्त्री बन जाता है। भूमि का चलना उसने मालूम किया और दूर-वीक्षण यन्त्र का आविष्कार किया। जेम्स वाट की ओर देखिए। उसकी दादी उसको डांटती रहती थी कि वह दिन भर चूल्हे के पास बैठकर केतली में पानी क्यों उबालता रहता है। परन्तु यह हठी लड़का निरन्तर अपने प्रयोग मे व्यस्त रहा और संसार को स्टीम इञ्जन दे गया।

कौन अनुमान कर सकता है कि इन बालकों के माता पिता यदि इन के मार्ग में रोड़ा अटकाने मे सफल हो जाते तो संसार की सभ्यता, संस्कृति और विज्ञान का कितनी हानि होती ?

माता पिता समझते है कि वह अपनी संतान के हित चिन्तक हैं। अतः उनको यह अधिकार है कि अपने बच्चे के लिए जो भी पेशा या व्यवसाय उचित समझें, उसके सामने रखें। वह अपने चौकोर बच्चों को गोल सूराखों मे ठोंसने का असफल प्रयत्न करते हैं। प्रायः उनकी इच्छा यह होती है कि जो उद्योग वह स्वयं कर रहे है, वही उनके बच्चे भी करें। दूसरे शब्दों मे वह बड़े होने के नाते अपने अधिकार का अनुचित प्रयोग करते है। इसका परिणाम यह होता है कि एक ओर तो वह स्वयं कुढ़ते रहते हैं कि उन के बच्चे अपने कामों मे दिलचस्पी नहीं लेते और दूसरी ओर संतान का जीवन कटुता पूर्ण हो जाता है क्योंकि उनके लिए जो उद्योग चुना गया है वह उनके स्वभाव के अनुकूल नहीं।

हमारे समाज में कार्य-वितरण की अव्यवस्था इसी जबरदस्ती की उपज है। एक पश्चिमी लेखक ने लिखा है, "जिन्हें कृषक बनना चाहिए था वह कानून की गरदन पर छुरी चला रहे हैं। जिन्हें भाषा विशेषज्ञ बनना था वह कारखानों में जान खपा रहे

हैं। जिन्होंने खेतों और जहाज़ों में काम करना था वह कालेजों में पुस्तकों के साथ माथा मार रहे हैं। जिन का काम यह था कि दीवारों पर सफेदी किया करें, वह चित्रकारी करके अपने अनाड़ी पन मे कैनवस (canvas) खराब कर रहे हैं। जिन्हें क्लर्क और मुंशी बनना चाहिए था, वह बेपरवाई और बे दिली के साथ कपड़ा नाप रहे हैं। जो लोग जूते बनाने में प्रवीण हो सकते थे वह तुकबन्दी करके अपने आप को अद्वितीय कवि समझ रहे हैं। जिन्हें सरजन बनना चाहिए था वह कसाई बन गये हैं और जिन्हें कसाई बनना था वह सरजन।"

हमारी शिक्षा प्रणाली ने हमारे नवयुवकों मे एक विचित्र विचारधारा लादी है कि वह कुछ उद्योगों को उच्च और दूसरों को नीच समझने लगे हैं। हस्तोद्योगों से उनको विशेष घृणा हो गई है। उनके विचार में क्लर्की से बढ़कर कोई काम नहीं। इस भ्रामक और बेहूदा दृष्टिकोण ने हमारे देश को अकथनीय हानि पहुंचाई है। नवयुवकों को ध्यान रखना चाहिए कि कोई कला और कोई उद्योग घटिया नहीं। किसी काम का अच्छा या बुरा होना, उसके करने वाले पर निर्भर है। सम्भव हो सकता है कि एक अच्छा दरज़ी या मोची अपने उद्योग के लिए यश प्राप्त कर ले और एक एञ्जीनियर या डाक्टर अपने काम को बदनाम कर दे। संसार किसी कला विशेष की प्रशंसा नहीं करती, कला-प्रवीण होने की प्रशंसा करती है। बाटा के जीवन का अध्ययन कीजिए। चैकोसलावाकिया का वह अज्ञात लड़का जिसने फटे पुराने जूतों की मरम्मत करने से जीवन प्रारम्भ किया था, बूटों का सम्राट प्रसिद्ध हुआ। उसका व्यापार समस्त संसार मे फैला हुआ है। वह किसी सिकन्दर, नैपोलियन या चर्चिल से कम प्रसिद्ध नहीं। यह प्रवीण होने का स्वाभाविक फल है। परन्तु यह याद रखना चाहिए कि किसी कला मे प्रवीण होना तब तक सम्भव नही जबतक कि मन और मस्तिष्क

की सम्पूर्ण शक्ति उस मे न लगा दी जाए।

इस मे संदेह नहीं कि पेशे के चुनाव के बारे मे बहुत से बच्चों का विचार बहुत धुंधला होता है। वह बहुत बड़े होने तक भी अपने पेशे के बारे म कोई निर्णय नहीं कर पाते। कई बार तो वह वर्षों तक डांवा डोल ही रहते है। एक काम मे असफल होकर दूसरा शुरू कर देते है। दूसरे से उकता कर तीसरा प्रारम्भ कर देते है। ऐसी अवस्था में उनको मलामत करने या बुरा भला कहने की आवश्यकता नहीं। यदि वह मन्द बुद्धि है तो यह उनका दोष नही। वह विवश है। दो चार बार का अनुभव उन्हे सिखा देगा कि उनको प्रकृति ने किस काम के लिए बनाया है। वह अपना मार्ग स्वयं ही ढूंढ़ लेंगे। झिड़कने और डाटने से उनके सुधार की आशा करना भूल है। इसका परिणाम निराशा के अतिरिक्त कुछ भी नहीं होगा।

अमरीका के प्रथम प्रधान वाशिंगटन को उसकी मां अयोग्य और बुद्धू कहा करती थी स्कूल मे भो उसे बहुत सुस्त और निकम्मा समझा जाता था। आशा नहीं थी कि वह संसार मे कोई काम कर दिखाएगा। परन्तु उसी वाशिंगटन ने ४६ वर्ष की आयु मे अपने युग के सबसे बड़े सेनापति को पराजित किया। इंगलैण्ड के प्रसिद्ध लेखक गोल्ड स्मिथ के अध्यापक उसके मंद बुद्धि और मूर्ख होने को हंसी उड़ाया करते थे। वह सर्जरी के स्कूल में प्रविष्ट हुआ तो उसे वहा से निकाल दिया गया। वही असफल विद्यार्थी साहित्य के संसार मे इतनी ख्याति पाकर अमर हो गया। राबर्ट क्लाईव भी अपने विद्यार्थी जीवन मे मूर्ख लड़का समझा जाता था। परन्तु उसी क्लाईव ने ३२ वर्ष की आयु मे प्लासी में तीन हजार सैनिकों के साथ ५० हजार भारतीय सैनिकों को पराजित किया। और उसी ने भारत मे अंग्रेजी राज्य की आधार शिला रखी।

वास्तविकता यह है कि किसी भी बच्चे का मस्तिष्क किसी विशेष उद्योग की ओर झुकाव से विहीन नहीं होता। यह दूसरी बात है कि कुछ अपने झुकाव को शीघ्र प्रकट कर देते हैं और कुछ देर से। माता पिता का कर्तव्य केवल इतना ही है कि वह अपने बच्चों के स्वाभाविक झुकाव को समझकर उन्हे पेशे के चुनाव मे सहायता दें। पश्चिमी देशों मे आजकल इस बात को बड़ा महत्व दिया जाता है। कुछ देशों में तो ऐसी संस्थाएं भी है जो विद्यार्थी जीवन मे ही बता देते है कि वह किन-किन पेशों मे सफल हो सकते है जैसे एक विद्यार्थी के मनोविज्ञान के अध्ययन से जब यह ज्ञात हो जाए कि तीव्र बुद्धि है, जो भी बात करता है, सावधानी और दलील के साथ करता है और उसको अपने ऊपर विश्वास भी है। तो यही परिणाम निकाला जा सकता है कि वह एक सफल बैरिस्टर बन सकता है। इसी जांच परख के दौरान उसकी अपनी रुचि भी जान ली जाती है कि वह स्वयं भी इसी पेशे को पसंद करता है। उसके पश्चात यह देख कर कि उसके माता पिता उसको बैरिस्टरी की शिक्षा दिलवा सकते है, उसके लिये यह पेशा चुन दिया जाता है।

एमर्सन के शब्दों मे जीवन का सबसे बड़ा इनाम और मनुष्य का सबसे बड़ा सौभाग्य यही है कि वह अपने स्वभाव के अनुकूल पेशा अपना कर दिलचस्पी और आनन्द प्राप्त कर सके।

पेशे के ठीक चुनाव के पश्चात दूसरा प्रश्न उसके ठीक और उचित शिक्षण का है। नवयुवको की इच्छा होती है कि वह शीघ्रातिशीघ्र इस मंजिल से निकल कर अपने पाव पर खड़े हो जाएं। वस्तु स्थिति यह है कि इस विषय मे उतावलेपन से अधिक हानिकारक कुछ भी नहीं। अधूरे शिक्षण, अपूर्ण अनुभव और अपर्याप्त ज्ञान के साथ किसी भी उद्योग या कला मे प्रवीण

होना सम्भव नहीं। उदाहरणार्थ वह विद्यार्थी जिसको अपने विद्यार्थी जीवन में लेख लिखने का शौक हो, दो चार ऊट पटांग लेख समाचार पत्रों में प्रकाशित करवा कर यदि अपने आपको उत्तम पत्रकार समझने की गलती में फंस जाता है और शिक्षा समाप्त करते ही कोई तथाकथित साहित्यिक पत्र प्रारम्भ कर देता है तो उसे अपनी भूल का फल भुगतने के लिये अधिक देर नहीं लगेगी। प्रायः पहली ही ठोकर उसे अपना मार्ग बदलने पर मजबूर कर देती है।

ठीक चुनाव, उत्तम शिक्षा, दीर्घ अनुभव और गम्भीर ज्ञान द्वारा ही किसी व्यवसाय में पूर्णता प्राप्त हो सकती है।

व्यवसाय के नियम

किसी व्यक्ति को सफलता इसी बात से नहीं मिल जाती कि उसने अपने स्वभाव के अनुकूल पेशा चुन लिया है। काम में प्रवीणता प्राप्त कर लेना भी सफलता के लिए पर्याप्त नहीं। प्रत्येक व्यवसाय के कुछ विशेष नियम और ढंग होते हैं। यदि उनका ध्यान न रखा जाए तो प्राकृतिक झुकाव और प्रवीणता आदि गुण कुछ सहायता नहीं कर सकेंगे। वहुत सम्भव है कि इन गुणों के बावजूद भी असफलता का मुख देखना पड़े और सारा जीवन दैनीय दशा मे बोते। संसार केवल यह नहीं देखता कि कोई व्यक्ति अपने काम के विषय में कितनी निपुणता प्राप्त किए हुए है। वह यह भी देखता है कि वह अपने पेशे के व्यवहारिक नियमों से भी परिचित है अथवा नहीं।

कोई भी व्यवसाय हो, उसे व्यापार से भिन्न नहीं समझा जा सकता। एक टोकरी उठाने वाला मजदूर भी वास्तव में एक व्यापारी है। वह अपना शारीरिक श्रम वेचकर जीवन यापन करता है। दफ्तर में काम करने वाला क्लर्क भी एक व्यापारी है। अपने मानसिक परिश्रम का वदला लेता है। और दुकानदार तो व्यापारी है ही। वह अपना माल देता है और दाम पाता है। इसी प्रकार वकील डाक्टर, इंजीनियर सभी व्यापारी हैं। प्रत्येक व्यक्ति संसार की मण्डी मे अपना काम वेचकर- अपना पेट पाल रहा है। अतः यह कहना गलत नहीं कि व्यापार के नियम प्रत्येक पेशे के आधार-भूत नियम होने चाहिए। किसी पेशे को इन नियमों से मुक्त नहीं कहा जा सकता।

व्यवसाय के व्यवहारिक नियमों के जिक्र में मैं सर्व प्रथम

स्थान ईमानदारी को दूंगा। इसलिए नहीं कि यह एक धार्मिक आज्ञा है और सभी धर्मों ने इसको बहुत महत्त्व दिया है। वरन् इसलिए कि ईमानदारी सर्वोत्तम नीति है। इससे ठोस और दृढ़ परिणाम निकलते हैं। इसमें उन्नति का रहस्य छिपा है। ईमनदारी से अच्छा कोई विज्ञापन नहीं। इससे अच्छी कोई साख नहीं। यह मनुष्य के मानसिक और भौतिक विकास का अमूल्य नियम है।

संसार में ईमानदार व्यापारियों और कर्मचारियों की सदा मांग रही है। वह फर्म, वह दुकान, वह क्लर्क और वह मजदूर बड़ा भाग्यवान है जिसके साथ बरतने वाले लोग उसे ईमानदार समझते है। असफलता अधिकतः उन्हीं लोगों के हिस्से में आती है जो लेन देन के खरे नहीं होते। जो अपने आसामियों, ग्राहकों और मालिकों को धोखा देते हैं। जो समय मे, धन में, माल में बेईमानी को अपना स्वभाव बना लेते हैं।

कारोबार या पेशे का उद्देश्य लोगों को बुद्धू बना कर अपना उल्लू सीधा करना नहीं। यह "ठीक" है कि कुछ लोग चालाकी और धोके से भी "सफल" हो जाते हैं। परन्तु उनकी सफलता वास्तव में कोई सफलता नहीं। एक पुरानी लोकोक्ति है और उसके ठीक होने मे कोई सन्देह नहीं कि "काठ की हंडिया बार-बार नहीं चढ़ती।" बेईमानी और धोखे का भंडा एक न एक दिन अवश्य फूटता है।

मैं वर्षों तक एक वृद्ध व्यापारी के सम्पर्क में रहा हूँ। उनका अब देहांत हो चुका है। ईमानदारी उन के कारोबार का आधार भूत नियम था। वह अपने कारखाने में बढ़िया से बढ़िया माल तैयार करते थे। उनके पास जो ग्राहक आता वह बच्चा हो या बूढ़ा, अज्ञात व्यक्ति हो या अपना सम्बन्धी, सब के साथ समान व्यवहार करते। ऐसा कभी नहीं हुआ कि कोई

प्रियजन उनके निश्चित दामों में कोई कमी करवाने में सफल हो सका हो। ऐसा भी कभी नहीं हुआ कि किसी अनजाने व्यक्ति से उन्होंने कभी अधिक दाम लिए हों।

लोगों को उनके तैयार किए हुए माल और उनके लगाए दामों पर पूरा भरोसा था। उनका प्रत्येक ग्राहक उनका चलता फिरता विज्ञापन था। दूर दूर से व्यापारी उनसे माल खरीदने के लिए आया करते थे। और यह केवल इसलिए कि उनकी ईमानदारी प्रसिद्ध थी।

ईमानदारी मित्र बनाने मे सहायता करती है और मित्र सफलता का मुख्य नियम समझे गए है। मैं एक पुस्तक विक्रेता की दुकान पर गया, उससे कुछ पुस्तके खरीदीं। वापस आते समय मैं अपना बहुमूल्य कलम उसकी दुकान के काऊँटर पर भूल आया। मुझे याद भी न रहा कि कलम कहाँ रखकर भूल गया हूँ। कई सप्ताह के पश्चात् मुझे फिर उस दुकान पर जाने का अवसर हुआ। दुकानदार ने मुझे देखते ही मेज़ की दराज़ खोली और कलम निकालकर मेरे हवाले कर दिया। मेरे मन पर उसकी ईमानदारी का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा। इस घटना को कई वर्ष बीत गए। परन्तु मैं इसे आज तक नहीं भूला और न ही कभी भूल सकूंगा। मै जब भी लाहौर जाता हूँ उसको अवश्य मिलता हूँ। जो पुस्तक मुझे उसकी दुकान से मिल सके, अन्य दुकान से नही खरीदता। उसकी छोटी-सी ईमानदारी ने मुझे सदा के लिए उसकी दुकान से बाँध दिया है।

व्यवसाय का दूसरा मुख्य नियम मित्रता या निजी सम्बन्ध (Personal Touch) है। बहुत से लोग अपने काम से काम रखते है। जिन लोगों से उन का सम्बन्ध आ रहा है, उनको कोई महत्त्व नहीं देते। उनमें कोई दिलचस्पी नहीं लेते। उनके साथ सम्बन्ध स्थापित करने का कोई प्रयत्न नहीं करते। मैं

समझता हूँ कि यदि-कोई अच्छे से अच्छा और योग्य से योग्य व्यक्ति भी ऐसा व्यवहार करेगा तो वह अपने पेशे या व्यपार को पूरी ऊंचाई तक ले जाने में सफल नहीं होगा।

अपने ग्राहकों, साथियों, शिष्यों और कर्मचारियों के साथ निजी सम्बन्ध स्थापित करना सफलता की जमानत के समान है।

एक अमरीकी पत्रिका में निजी सम्बन्ध का महत्त्व बताने के लिए एक लेख प्रकाशित हुआ है। लेखक रास बायरन (Ross Byron) लिखता है :—

"मेरे एक मित्र को बड़ा कठिन काम सौंपा गया। उसे एक ऐसे होटल का मैनेजर बनाया गया जो इतना खराब था कि सुधार असम्भव था। सिथति बड़ी निराशा पूर्ण थी। होटल क्या सफेद हाथी था। कोई व्यक्ति उस का मालिक बनना तो क्या उसमें ठहरना भी पसंद नहीं करता था। छः बार उसका दिवाला निकल चुका था।"

"मेरे मित्र की आयु कुछ अधिक न थी। उसे होटल के काम का कुछ अनुभव भी नहीं था। परन्तु उसे कठिनाइयों और विशेषकर असम्भावनाओं से प्रेम था। उसने दृढ़ इरादे के साथ यह काम हाथ मे ले लिया।

"हम मे से किसी को भी आशा नहीं थी कि वह सफल होगा। होटल में आत्मा ही नहीं थी। कोई जीवन न था। वह एक असफल होटल था।

"वह होटल एक मध्यम श्रेणी के नगर में था। वहां का वातावरण किसी भी होटल के अनुकूल नहीं था। इसके अतिरिक्त उसके बारे मे प्रसिद्ध था कि वह ठहरने के योग्य नहीं।

"परन्तु उस श्वेत हाथी को स्वावलम्बी बनाने मे उसे केवल दो वर्ष लगे। पॉच वर्ष के अंदर अदर वह तेजी से दौड़ने लगा। और।अब वह अमरीका के प्रमुख होटलों मे गिना जाता है।

अपने अतिथियों के साथ मैत्री पूर्ण व्यवहार करने तथा उनमें व्यक्तिगत दिलचस्पी लेने के कारण उसने बड़ी प्रसिद्धि पा ली है।

इस नवयुवक ने यह चमत्कार कैसे कर दिखाया ?

बड़ी आसानी से। वह अपने प्रत्येक अतिथि का आदर करता। उसे पूर्ण महत्त्व देता। इस आशय से वह निश्चित नियमों के अनुसार काम करता—वह उनके नाम लेकर बुलाता। उनकी पसंद के खानों और उनकी इच्छानुकूल कमरों की सजावट की ओर विशेष ध्यान देता। और जब वह होटल से चले जाते तो उनसे पत्र व्यवहार जारी रखता।

यह नियम नए नही। नवीनता केवल इतनी ही है कि लोग जिन चीज़ों और कामों के विषय में बातें करते हैं वह उनके अनुसार काम करता था।

यदि आप भी लोगों में ऐसी ही दिलचस्पी लें जैसी मेरे मित्र ने ली। यदि आप अपने मिलने वालों को उनका महत्त्व जतला दें और निजी समबन्धों द्वारा उनके साथ लगाव रखे तो आप भी मेरे मित्र की भांति न केवल व्यक्तिगत तौर पर सफल होंगे अपितु व्यापार मे भी सफलता पा सकेंगे। यह एक निश्चित नियम है और कभी गलत नहीं होता।

उपयुक्त वाक्यों में उन लोगों के लिए बहुत अच्छा सुझाव है जो अपने पेशे या व्यापार की असफलता का रोना रोते है। उन दुकानदारों को जिन का ध्यान ग्राहक के मुख से अधिक तुला की डंडी पर रहता है, उन कारखाने दारों को जो ग्राहक से अधिक अपने माल की प्रशंसा पसंद करते हैं और उन क्लर्कों को जो अपने साथियों और मैनेजरों से भी अधिक अपने कागज़ों को महत्त्व देते है, व्यक्तिगत सम्बन्धों की ओर भी ध्यान देना चाहिए। निजी सम्बन्ध में जो चुम्बक समान आकर्षण है वह माल के सौंदर्य और गुणों मे नहीं।

भेद रखना किसी पेशे और व्यवसाय का तीसरा महत्त्व पूर्ण नियम है। बहुत कम लोग ऐसे दिखाई देते हैं जो इसके महत्त्व को समझते हों। इस लिए बहुत से लोगों को यह नियम जानने की आवश्यकता है।

एक अच्छा डाक्टर अपने ग्राहक रोगियों के रोग के बारे में कभी अन्य लोगों को नहीं बताएगा। रोग साधारण हो अथवा जटिल, वह उनको छुपाना अपना कर्त्तव्य समझेगा। कोई बैंक अपने ग्राहकों का, कोई बीमा कम्पनी अपने पालिसी होलड्रों का और कोई वकील अपने मवक्किल का भेद कभी नहीं खोलेगा।

एक स्त्री को कोई रोग लगा हुआ था। उसने यह बात अपने सब मिलने जुलने वालों से छुपा रखी थी। वह नहीं चाहती थी कि लोग उस से उसके रोग के विषय में प्रश्न करते रहें और वह उनके उत्तर देने का सिर दर्द मोल ले। वह लोगों की परिणाम रहित, रस्मी सहानुभूति को अनावश्यक समझती थी। परन्तु जिस लेडी डाक्टर से वह चिकित्सा करवा रही थी उसने अपने पेशे के नियम को भुलाकर किसी व्यक्ति को उसके रोग के बारे में बता दिया। फल वही हुआ जिसका डर था।

बैंक और डाकखाने भेद रखने का उत्तम उदाहरण प्रस्तुत करते हैं। एक व्यक्ति किसी रिसाले के दफ्तर मे जाना चाहता था। वह अनजान था। दफ्तर का पता नहीं जानता था। उसने कई लोगों से पूछा। किसी ने न बताया। निराश होकर वह डाकखाने गया। उसने बहुत मिन्नतें कीं परन्तु वहां के कर्मचारियों ने पता बताने से इन्कार कर दिया। उसे बताया गया कि लोगों के पते हमारे पास अमानत के तौर पर पड़े हैं। कई लोग अपने घरों में बैठकर केवल विज्ञापनों द्वारा अपना कारोबार चलाते हैं। उनका कोई दफ्तर नहीं होता, कोई सामान नहीं होता। वह नहीं

चाहते कि लोग उनकी परिस्थिति को जानें। डाकखाने के अतिरिक्त कोई उनका ठिकाना नहीं जानता। हम उन के भेद की रक्षा करते हैं। यदि हम ऐसा न करें तो सरकारी दफ्तरों पर से लोगों का विश्वास उठ जाए।

प्रत्येक व्यापारी और काम करनेवाले व्यक्ति को अपने ग्राहकों और आसामियों के भेद इसी प्रकार सुरक्षित रखने चाहिएं। यहां तक कि बड़ी से बड़ी रिश्वत भी भेद खोलने का कारण न बन सके। दूसरों के भेद रखने के साथ साथ अपने भेद छुपाकर रखना भी एक व्यावहारिक नियम है। जो व्यक्ति अपने भेद को नियन्त्रित नहीं रख सकता उसे कई बार बड़ी कठोर ठोकर खानी पड़ती है। वह कई ऐसे अवसर खो बैठता है जिनके लिए उसे जीवन भर हाथ मलते रहना पड़ता है।

मैंने एक बार किसी व्यक्ति के पास अपनी एक व्यापारिक योजना का जिक्र किया। उसने वह योजना किसी और व्यक्ति को बता दी। मेरा प्रतिद्वन्द्वी बड़ा संकीर्ण बुद्धि और ओछा व्यक्ति था। उस ने मेरे मार्ग में रुकावटें डालीं और स्वयं उस योजना को अपना कर मुझे हानि पहुंचाने का प्रयत्न किया। यदि मैं अपनी समस्त मानसिक और क्रियात्मक शक्तियों से काम न लेता तो निश्चित रूप से हार जाता और जो लाभ उठाना चाहता था, न उठा सकता। यह ठीक है कि मुझे सफलता मिली। परन्तु यह भी ठीक है कि मैंने अपना रहस्य खोल कर भूल की थी। मुझे विश्वास है कि फिर इस प्रकार की गलती नहीं करूंगा।

अपने पेशे के बारे में आप जो भी सोचे, उसे छुपाकर रखने के तीन लाभ हैं। एक यह कि आपकी क्रियाशक्ति हवा में नहीं बिखरेगी। दूसरे यह कि असफल होने पर आपको किसी के सामने अकारण लज्जित नहीं होना पड़ेगा। तीसरे यह कि अन्य व्यक्ति मुकाबिले मे आकर आपको हानि नहीं पहुंचा सकेगा।

व्यवसाय का चौथा नियम स्वच्छता है। यदि आपका सामान स्वच्छ हो, दुकान स्वच्छ हो, कार्य, शरीर और परिधान स्वच्छ हो तो लोगों पर निश्चय ही अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

खाने पीने की चीजें बेचने वालों को स्वच्छता की जितनी आवश्यकता है, अन्य किसी को नहीं। आपने ऐसे होटल देखे होंगे, दूध, दही, मिठाई और फलों की ऐसी दुकानें देखी होंगी जहां से कोई चीज़ खरीदना तो दूर रहा, कोई सभ्य व्यक्ति उनके पास खड़े होने में लाज अनुभव करता है। इस प्रकार की ८० प्रतिशत दुकानों की छतें और दीवारें ध्वांसी हुई होंगी। मच्छर, मक्खियां, हड्डियां, सड़ी बुसी चीजें, गंदे मटके, गंदे फर्श और घिनावने बरतन।

कुछ महीने हुए मुझे एक बहुत बड़े होटल में खाना खाने का अवसर हुआ। होटल की इमारत, सामान, मेज़, कुर्सियां, दीवारों पर लगे हुए दर्पण, सब कुछ सुन्दर था। परन्तु खाने के हाल में बूट पालिश करने वाले लड़कों का तांता बंधा हुआ था। गले में भद्दे और गंदे थैले लटकाए हाथों में ब्रश लिए वह सारी मेज़ों के आस पास मंडलाते और अतिथियों से बूट पालिश कराने के लिए कहते। होटल के मैनेजर को इस बात का कदापि ध्यान न था कि खाने के हाल में गंदा और घिनावना दृश्य स्वच्छता और सभ्यता के सर्वथा विपरीत है।

स्वच्छता कारोबार का एक आवश्यक तत्व है। इसके बिना कोई व्यक्ति बुरा भला काम तो चला सकता है परन्तु ख्याति नहीं पा सकता। विख्यात होने के लिए उसे स्वच्छता और पवित्रता का विशेष ध्यान रखना होगा।

व्यवसाय का पांचवां नियम अध्ययन है। अध्ययन एक ऐसा शब्द है जिसका अर्थ बड़ा विस्तृत है। इस से अभिप्राय उन पुस्तकों और पत्रिकाओं का अध्ययन ही नहीं जो किसी पेशे की

उन्नति और सफलता मे सहायक हों अपितु इसका अर्थ मानव प्रकृति का अध्ययन भी है। एक अच्छा व्यापारी लोगों के मानसिक झुकाव के अध्ययन को भी अपना कर्तव्य समझता है। वह अपने काम, लोगों के स्वभाव और झुकाव, आस पास की आवश्यकताओं, बाजार की स्थिति और बदलते हुए फैशनों का निरंतर अध्ययन करता रहता है। इससे वह अपने व्यापार को समय के अनुकूल बना लेता है।

मैं एक योग्य और अनुभवी वैद्य को जानता हूँ। आज से दस वर्ष पूर्व मैंने उसे एक छोटी-सी दुकान पर बैठा देखा था। इन दस वर्षों मे संसार कहीं से कहीं पहुँच गया परन्तु उसके चिकित्सालय मे कोई परिवर्तन नहीं हुआ। रोगियों के देखने और रोग के निदान के लिए वहाँ न कोई पर्दा है और न कोई अलग स्थान। रोगी स्त्रियों और पुरुषों को एक ही स्थान पर बैठना पड़ता है जो रोगी अकेले मे अपनी स्थिति वर्णन करना चाहे, उसे बड़ी दिक्कत होती है। उसको उस समय तक प्रतीक्षा करनी पड़ती है जब तक अन्य सभी रोगी चले न जाएं। वैद्य के पास कोई बैंच नहीं। कोई कुर्सी नहीं। एक फटी पुरानी चटाई है। उसी पर सारे रोगी बैठते हैं।

परन्तु मैं एक और वैद्य से परिचित हूँ। उसे मैं दस ही वर्ष से जानता हूँ। प्रारम्भ मे उसके चिकित्सालय की भी वही दशा थी जो मैं ऊपर वर्णन कर चुका हूँ। परन्तु अब उसकी शक्ल बदल चुकी है। कमरे एक की बजाए दो हैं। एक मे वैद्य स्वयं बैठता है, दूसरे में उसका सहायक औषधियाँ तैयार करता है विशेष रोगियों को अलग देखने की व्यवस्था है। अब वहाँ रोगी फर्श पर नहीं बैठते। उनके लिये कुर्सियाँ पड़ी हुई हैं। बिजली और पंखे की भी व्यवस्था है। स्वच्छता, सुव्यवस्था और सजावट ऐसी है कि रोगी चिकित्सालय मे जाते ही आधा कष्ट भूल जाता है।

इन दोनों वैद्यों में से पूर्वोक्त अधिक योग्य है। आयु बड़ी है और अनुभव अधिक। उसके निदान को अच्छे २ डाक्टर भी मानते हैं। परन्तु इन सारे गुणों के बावजूद दो समय की रोटी कठिनाई से कमा पाता है। मेरे विचार में उसकी भावी आयु इसी दशा में बीत जायगी। उसकी दशा देखकर मुझे सदा दुख होता है।

दूसरा वैद्य यद्यपि रोग निदान में इतना निपुण नहीं, परन्तु उसने परिस्थिति-निदान में गलती नहीं की। जब उसने देखा कि देश के अन्दर सभ्यता की धारा फैल रही है। लोग चटाइयों पर बैठना पसंद नहीं करते और कुर्सियों पर बैठना चाहते हैं। वह स्वच्छता, सहूलत और विश्राम के इच्छुक हैं तो उसने अपने चिकित्सालय की काया पलट दी। जो लोग मांगते थे, उसने वह दे दिया।

वह सफल है, धनवान है और लोकप्रिय है। मैंने एक डाक्टर से पूछा कि एक अच्छे डाक्टर मे क्या-क्या गुण होने चहिएँ। उसने कहा, "पवित्र चरित्र, सहानुभूति और अध्ययन। अध्ययन के महत्त्व पर ज़ोर देते हुए उसने कहा, "मैडीकल साइंस एक अपूर्ण साइंस है। मनुष्यों के रोगों की सूचि भी अभी पूर्ण नहीं हुई। रोग बदलते रहते है, निदान बदलता रहता है और चिकित्सा बदलती रहती है। एक सफल डाक्टर को इन सभी परिवर्तनों का ज्ञान होना चाहिए। अतः अध्ययन अनिवार्य है।"

अध्ययन केवल डाक्टर के लिए आवश्यक नहीं, प्रत्येक धन्धे के लिए आवश्यक है। कोई साहित्यकार, लेखक या सम्पादक अध्ययन के बिना उन्नति नहीं कर सकता। कोई एञ्जीनियर अपनी कला के निरंतर अध्ययन के बिना इमारतों के नए नए नमूने नहीं सुझा सकता। कोई प्रोफैसर अध्ययन के बिना अच्छा प्रोफ़ैसर सिद्ध नहीं हो सकता। कोई व्यापारी अध्ययन के बिना सफल

नहीं हो सकता। धन्धे के अन्दर और बाहर सर्वत्र अध्ययन अनिवार्य है।

व्यवसाय का छटा नियम आय और व्यय का व्योरा रखना है। किसी व्यापार या कारोबार के लिए जितनी आवश्यकता अच्छे माल की है, उतनी ही आवश्यकता हिसाब की है। यदि कोई काम अच्छे माल के बिना चल सकता है तो हिसाब के बिना भी चल सकता है। यदि अच्छे माल के बिना गुजारा नहीं तो हिसाब के बिना भी काम चलाना सम्भव नहीं।

जो लोग अपने पेशे या कारोबार मे हिसाब किताब नियमित रूप से नहीं रखते, वह अपनी आर्थिक अवस्था के बारे में सदा भ्रम मे रहते हैं। यह भ्रम उन्हे एक न एक दिन कारोबार सहित ले डूबता है।

कई बार वह उस रुपये को भी अपना समझ लेते हैं जो वास्तव में उनका नहीं होता। व्यापार रुपये को चक्र देता है। वह विभिन्न हाथों मे घूमता है। जितने लोग उस व्यापार में लगे होते हैं, उन सब का उसमें हिस्सा होता है। किसी का कम, किसी का अधिक। हिसाब किताब ही हमे इस बात का ठीक अनुमान करने में सहायता कर सकता है कि हमारी तिजोरी मे पड़े हुए रुपये में हमारा अपना कितना भाग है, कर्मचारियों का कितना, भागीदारों का कितना और बैंक का कितना। इसमें वह रुपया भी शामिल हो सकता है जो घाटा पड़ने पर हमे अलग करना पड़ेगा। और वह रकम भी इसी में है जो किराये, बिजली पानी के व्यय, माल की खरीद और विभिन्न करों के रूप मे हमारे जिम्मे है। हिसाब हमें बताएगा कि यह सारा खर्च निकालने के उपरांत हमारी वास्तविक पूंजी या लाभ कितना है।

किसी पेशे या कारोबार मे हिसाब किताब की वही स्थिति है जो रेल या मोटर के इंजन में गति सूचक घड़ी (Speedometer)

की। जिस इंजन में यह घड़ी नहीं, उसे निपुण से निपुण ड्राइवर भी उचित गति से नहीं चला सकता। उसकी गति इतनी सुस्त भी हो सकती है कि एक घण्टे की यात्रा दो घण्टे में निकले और इतनी तीव्र भी कि किसी दुर्घटना से तबाह हो जाए। दोनों अवस्थाओं में हानि निश्चित है।

हिसाब किताब से मानसिक शांति भी मिलती है। यह आपको बाज़ार में अपनी साख बनाए रखने में सहायता करेगा। कोई व्यक्ति आपको धोखा नहीं दे सकेगा और न ही आप किसी का अधिकार छीनने के संदेह में फंस सकते हैं। आपको किफायत करने की बहुमूल्य आदत मिलेगी और आपके अंदर दूरदर्शिता एवं सावधानी जैसे गुण पैदा होंगे।

व्यवसाय का सातवां नियम वचन और समय की पूर्ति है। वचन और समय को निभाने का विचार हमारे अन्दर अभी पूरी तरह पैदा नहीं हुआ। वचन भंग करना साधारण सी बात समझा जाता है। बहुत कम लोग इस त्रुटि पर लज्जित होने की आवश्यकता अनुभव करते हैं।

बहुत कम व्यापारी ऐसे मिलेंगे जो वचन के पाबन्द हों। कुछ ही दिनों में काम कर देने का वादा करके टालमटोल में कई कई सप्ताह निकाल देते हैं। एक मित्र ने मुझे बताया कि मैं ने गत सर्दियों के प्रारम्भ में एक दर्जी को कोट सीने के लिये दिया। सर्दियां बीत गईं, गर्मियां बीत गईं। परन्तु कोट अभी तक तैय्यार नहीं हुआ। कल-परसों अभी तक हो रही है।

लग भग सभी काम करने वाले लोग इस रोग में ग्रस्त हैं।

विलायती कम्पनियों और फर्मों में वादे की पाबंदी को पेशे और कारोबार का अनिवार्य अंग समझा जाता है। एक व्यक्ति ने एक घटना बताई कि उसने एक विदेशी फर्म को एक सूट तैयार

करने का आर्डर दिया। उसे बताया गया कि अमुक दिन सूट तैय्यार हो जाएगा। जब वह निश्चित तिथि को सूट लेने के लिए गया तो देखा कि दुकान बन्द है। केवल एक छोटा सा द्वार खुला था। द्वार के पास ही एक लड़का बैठा हुआ था। उसने सूट उसके हवाले करते हुए कहा, "फर्म के मालिक के किसी प्रियजन का देहांत हो गया है। दुकान बंद है। आपका सूट किसी अन्य फर्म से तैय्यार करवाया गया है। यह द्वार केवल आपकी प्रतीक्षा में ही खुला था ताकि वादे के अनुसार आपको चीज़ मिल जाय।

वादे के अतिरिक्त समय का भी हम लोगों में बहुत कम ध्यान रखा जाता है। जो व्यक्ति जब चाहे दुकान खोल लेता है और जब चाहे बन्द कर देता है। कर्मचारियों का भी यदि ध्यान न रखा जाए तो वह समय के अनुसार काम करना अपना कर्तव्य नहीं समझते। यह गलती है और इस गलती का उन्हे किसी न किसी रूप में अवश्य ही फल भुगतना पड़ता है।

व्यवसाय का आठवा नियम विज्ञापन है। वर्तमान काल में विज्ञापन का रीढ़ की हड्डी के समान महत्त्व हो गया है। व्यापारिक प्रति-द्वन्द्व विज्ञापन के बिना असम्भव हो गया है।

यद्यपि उपर्युक्त सभी गुण अपने आप मे अच्छे विज्ञापन है परन्तु वह पर्याप्त नहीं। समाचार पत्रों, पैम्फलैटों और पोस्ट्रों के अतिरिक्त रेडियो द्वारा एक एक फर्म लाखों रुपये व्यय करके विज्ञापन कला के कमाल दिखा रही है।

हमारे देश मे इस कला को अभी लोक प्रियता नहीं मिली। औषधियों के विज्ञापन विशेष तौर से आपत्ति जनक भाषा मे प्रकाशित होते है। इन्होंने सर्वसाधारण की नैतिकता और स्वास्थ पर बहुत बुरा प्रभाव डाला है। उनमें गम्भीरता और औचित्या का विशेष अभाव देखा गया है। कई विज्ञापन इतने लम्बे होते है कि

लोग उन्हें देखना तक पसन्द नहीं करते।

विज्ञापन का मुख्य गुण यह होना चाहिए कि वह सच्चा हो। हमारे देश में प्रायः विज्ञापन देनेवाले धोखे और मकर से लोगों की जेब पर डाका डालते हैं। घड़ियों, पिस्तौलों और औषधियों के विज्ञापनों ने अनेक लोगों के मन में विज्ञापना के लिए घृणा पैदा कर दी है। लोग सच्चे विज्ञापनों पर भी विश्वास नहीं करते। विज्ञापन सदा सच्चा होना चाहिए। झूठ, अत्युक्ति और बेईमानी द्वारा कोई व्यापार थोड़ी देर के लिए तो चमक सकता है। परन्तु अन्त में हानि और तबाही के अतिरिक्त कुछ हाथ नहीं आता।

यह व्यवसाय के कुछ मुख्य नियम हैं। यदि इनके अनुसार कार्य किया जाए तो असफलता का कोई कारण नहीं और सफलता में कोई संदेह नहीं।

आदर्श चिकित्सक

आज से कई वर्ष पूर्व की बात है। हमारे घर में एक व्यक्ति बीमार था। उस की चिकित्सा के लिए मुझे चिकित्सक ढूंढना था। रोग बड़ा गम्भीर था। इस लिए मेरी इच्छा थी कि किसी योग्य तथा अनुभवी डाक्टर या हकीम से ही इलाज शुरू करवाया जाए।

एक हकीम और डाक्टर से मेरी अच्छी जान पहचान थी। परन्तु आस पास के लोगों ने परामर्श दिया कि एक हकीम साहिब, जिनकी ख्याति दूर दूर तक फैली हुई है, से इलाज कराया जाए। मैं उन के पास गया। वह चिकित्सालय मे बैठे थे। आस पास बैंचों और कुर्सियों पर रोगी बैठे थे। वह एक एक करके अपने स्थान से उठकर उनके पास जाते और अपने हालात बताते। हकीम साहिब ऐसे ठाठ से बैठे सुनते मानो उनको रोगी से कोई दिलचस्पी नहीं। रस्मी तौर पर नबज देखते और साधारण सा निरीक्षण करते। अपनी ओर से कोई प्रश्न नही पूछते थे। रोगी जो कुछ बता देता, उसी के सहारे नुस्खा लिखकर उसके हवाले कर देते। कभी कभी तो मुझे ऐसा लगा कि वह रोगी की ओर आंख उठाकर देखने मे भी अपनी मान हानि समझते हैं।

जब मेरी बारी आई तो मैं ने उनसे प्रार्थना की, "एक स्त्री को अमुक रोग है। वह यहां नहीं आ सकती। कृपया आप मेरे साथ चलकर उसे देख ले।" हकीम साहिब ने रुखाई के साथ कहा, "मैं तो नहीं जा सकता। आपही उसे ले आईये।"

मुझे बड़ी निराशा हुई। मैं वहां से चला आया। रोगी स्त्री को उनके पास ले जाना सम्भव ही न था। परन्तु यदि सम्भव भी

होता तो मैं उनके पास न ले जाता चाहे वह हकीम अजमल खां के समान योग्य क्यों न हों। मुझे बार बार यह विचार आता था कि उनके पास आने वाले रोगियों का रोग तो सम्भव है दूर हो जाता हो परन्तु उनको प्रसन्नता और संतोष कदापि नहीं होता होगा। रोगी को प्राणहीन, रूखे और अवहेलना-पूर्ण चिकित्सा की आवश्यकता नहीं होती। उसे प्रेम और सहानुभूति की भी आवश्यकता होती है। खैर कोरे इलाज के मुकाबले में वह इलाज अधिक सफल और प्रभावकारी होता है जिस में रोगी के व्यक्तित्व को भी उतना ही महत्व दिया जाए जितना रोग को दिया जाता है। रोगी के व्यक्तित्व मे जितनी दिलचस्पी ली जाएगी उतना ही उसका विश्वास अधिक दृढ़ होगा। और विश्वास की दृढ़ता इलाज के लिए बहुत उपयोगी सिद्ध होती है।

ऊपर बताया गया है कि मैंने उस योग्य और प्रसिद्ध हकीम से इलाज करवाना उचित न समझा। उसकी बजाए एक ऐसे डाक्टर को चुना जो आयु, अनुभव और प्रसिद्धि की दृष्टि से तो उस के बराबर न था परन्तु मानवता, सहानुभूति और नैतिकता की दृष्टि से एक सफल डाक्टर था। मैं जब उसके पास गया तो उसने मेरी ओर पूरा ध्यान दिया। रोगी की स्थिति को एकाग्रता के साथ सुना। मैंने जब उसे अपने साथ चलने के लिए कहा तो अन्य रोगियों को शीघ्र निपटा कर वह मेरे साथ हो लिया।

चार सप्ताह तक उसकी चिकित्सा जारी रही और वह स्त्री अच्छी हो गई। परन्तु मैं समझता हूँ कि यदि उसकी चिकित्सा सफल न भी होती और हमें किसी अन्य डाक्टर के पास जाना पड़ता तो भी हम उसके आभारी होते क्योंकि इलाज के दौरान उस ने बड़ी सहानुभूति से काम किया था। किसी अच्छे चिकित्सक से रोग दूर होने की आशा तो की जा सकती है परन्तु उसका इलाज स्वस्थ होने की शर्त नहीं हो सकता। कई बार बड़े-

बड़े योग्य चिकित्सक असफल होते देखे गए है।

मैं यदि चिकित्सक होता तो इस दूसरे चिकित्सक के दिल-चस्पी के गुण को अपने लिए आवश्यक समझता। मेरे पास जो भी रोगी आता, वह चाहे धनी होता या निर्धन, मैं उसमें पूरी दिलचस्पी लेता। मेरी व्यापारिक नैतिकता मुझे कदापि यह न करने देती कि मैं अपनी योग्यता और ख्याति के घमण्ड में उन लोगों की अवहेलना करता जो मेरी सहायता के याचक तथा मेरी जीविका और ख्याति का कारण है।

(२)

एक बार मैं प्रैस में बैठा प्रूफ देख रहा था। अचानक मेरे बाएं कान में तेज दर्द उठा। कुछ ही मिनटों मे मुझे महसूस हुआ कि मैं काम नहीं कर सकूंगा। पीड़ा प्रतिक्षण बढ़ती जा रही थी। अन्ततः मैं किसी चिकित्सक की सहायता लेने के लिए विवश हो गया। प्रैस से थोड़ी ही दूर एक चिकित्सालय था। मैं दर्द से निढाल उसके पास पहुंचा। उसने कान का निरीक्षण किया। एक शीशी मे औषीध डाल कर मेरे हवाले कर दी और मुझे आवश्यक हिदायते दे दीं। मैं औषीध का मूल्य देकर बाहर आने वाला ही था कि उसने मुझे पूछा, "आप कहां रहते है?"

"रेलवे स्टेशन के पास।" मैंने उत्तर दिया।

"अब इतनी दूर जाएंगे आप?"

"जाना ही पड़ेगा।"

"मेरा आदमी अभी अभी कहीं बाजार गया है······वह जरा ठहर कर आएगा····· (कुछ सोच कर)······अच्छा, आप ठहरिये, साथ वाले कमरे मे बैठिए।"

उसने औषधि मेरे हाथ से ले ली और एक सोफे की ओर संकेत करते हुए मुझे लेटने को कहा। फिर जल्दी जल्दी स्टोव जलाया, दवा गर्म की और तीन चार बूंदे मेरे कान मे डाल दीं।

इसके उपरांत कनपट्टी पर और कान के आस पास मालिश भी की। इसके पश्चात् रूई के गर्म फाए रखकर ऊपर से पट्टी बांध दी।

आध घण्टे के अंदर अंदर मुझे शांति हो गई। दुकान से जाते समय मैंने उस चिकित्सक का हार्दिक धन्यवाद किया। अगले दिन मैंने एक पत्र द्वारा भी आभार प्रकट किया।

अपने इस अनुभव पर अधिक प्रकाश डालने के लिए मैं एक और घटना आपके सामने रखना उचित समझता हूं।

सन्ध्याकाल था। एक व्यक्ति अपने बीमार बच्चे को कन्धे से लगाए एक डाक्टर के पास गया। डाक्टर दैनिक क्रम के विपरीत वहां नहीं था।

उस व्यक्ति को डाक्टर पर बहुत विश्वास था। इसलिए वह पूछताछ करके उसके घर चला गया। द्वार पर पहुंच कर आवाज़ दी। अंदर से एक नौकर आया। उसने उसे बताया कि बच्चा बीमार है और डाक्टर साहिब को दिखाना है। नौकर यह बात सुनकर अंदर चला गया। थोड़ी देर के उपरांत लौटकर कहने लगा 'इस समय कम्पाऊंडर यहां नहीं है। इसलिए डाक्टर साहिब न तो बच्चे का निरीक्षण कर सकते है और न ही औषधालय मे जाकर दवा दे सकते है। कल आईये।'

उस व्यक्ति ने कहा कि बच्चे की दशा बड़ी खराब है। यदि डाक्टर साहिब तुरंत ही कष्ट करे तो बड़ी कृपा होगी। परन्तु डाक्टर साहिब पर इसका कुछ प्रभाव न हुआ। दूसरी बार उन्होंने अन्दर ही से कहला भेजा कि इस समय कोई सहायता नहीं की जा सकती। वह व्यक्ति निराश होकर चला गया।

यह घटना पूर्णतः सत्य है।

मैं यदि चिकित्सक होता तो ऐसा अवसर पड़ने पर नुस्खा तैय्यार करने, रोगी की मर्हम पट्टी करने या आंख कान मे दवा डालने को कदापि मान हानि का कारण न समझता।

मान हानि सेवा करने से नहीं, सेवा न करने और उपेक्षा पूर्ण व्यवहार करने से होती है।

जिस व्यक्ति में सहानुभूति और सेवा का भाव नहीं उसको डाक्टरी का उच्च व्यवसाय हाथ में लेकर इसके नाम को बट्टा नहीं समझना चाहिए। उसे चाहिए कि इसकी वजाए जीविका चलाने का कोई और साधन अपनाए।

(३)

एक अच्छे चिकित्सक मे सहानुभूति और सेवा का भाव होना ही पर्याप्त नहीं, उसमे त्याग की भावना भी होनी चाहिए। किसी चकित्सक की महानता का अनुमान इस बात के ज्ञान के बिना नहीं लगाया जा सकता कि वह अपने रोगियों के लिए कितना त्याग कर सकता है।

अच्छा चिकित्सक वह है जिस के मन मे रोगियों की सेवा का सच्चा भाव हो। जो अपने समय, आराम और कुछ अवस्थाओं मे धन का बलिदान भी प्रसन्नता पूर्वक कर सके। इस प्रकार के हकीम और डाक्टर हमारे देश में विरले ही होंगे। हमारे देश मे तो बहु सख्या उनकी है जो लोभी, स्वार्थी और पैसे के पुत्र हैं। कुछ लोगों के स्वार्थ ने तो पाषाण हृदयता का रूप धारण कर लिया है। वह अपने समय का एक क्षण भी किसी रोगी के लिए लगाने को तैय्यार नहीं। फीस के मामले में उनका नियम ऐसा बेलचक होगा कि किसी रोगी की असीम विवशता नम्रता और गरीबी भी उनको नरम नहीं कर सकती। ऐसे लोग अपने व्यवसाय के लिए ही नहीं वरन् मानवता के लिए भी लज्जा का कारण है।

मेरा अनुभव यह है कि इस प्रकार के उपेक्षा पूर्ण और स्वार्थी डाक्टर प्रायः घाटे मे ही रहते हैं। उनकी योग्यता भी उनके लिये यश प्राप्त नहीं कर सकती। वह न मित्र बना

सकते हैं और न सर्वप्रिय हो सकते हैं। इन बातों के अभाव में उनकी आय के साधन सुकड़ जाते हैं।

मैंने एक जर्राह देखा जो एक नवयुवक के घावों की मर्हम पट्टी किया करता था। यह नवयुवक उसे प्रतिदिन एक रुपया दिया करता था। एक दिन यह नियम भंग हो गया। अगले दिन जब उसको एक रुपया दिया गया तो उसने हाथ में लेते ही रुपये को फेंक दिया। उसका अभिप्राय यह था कि पिछले दिन का रुपया भी क्यों नहीं दिया गया। परन्तु इसका परिणाम यह निकला कि उसे दोनों रुपये देकर सदा के लिये छुटी दे दी गई।

जर्राह का इलाज संतोषजनक था। परन्तु इसके बावजूद उसकी सेवा को भुला दिया गया। और उसकी उपेक्षा केवल याद ही नहीं रही, उसकी चर्चा भी हुई।

इस मनोवृत्ति का एक डाक्टर एक सार्वजनिक संस्था के हस्पताल का इन्चार्ज था। उसकी उपेक्षा-वृत्ति कहावत बन चुकी थी। हस्पताल के निश्चित समय के पश्चात् किसी रोगी का निरीक्षण करके औषधि लिख कर देना तो दूर रहा, वह किसी की बात तक न सुनता था। लोग पीठ पीछे उसकी नकलें उतारा करते थे। उसके विषय में व्यंग किया करते थे। एक प्रसिद्ध व्यंग उल्लेखनीय है। एक साहिब घोड़े से गिर कर घायल हो गए। रात के दस बजे होंगे। उनका नौकर दौड़ा दौड़ा डाक्टर के पास गया और बोला, "लैफ्टीनेंट साहब घोड़े से गिर कर घायल हो गये हैं। तुरन्त चलिए।"

डाक्टर ने उत्तर दिया, वह घोड़े पर सवार ही क्यों हुए थे। और यदि हुए भी थे तो यह गिरने का कौनसा समय था। जाओ मैं नहीं जाता।

सारी बस्ती उसके व्यवहार से तंग आई हुई थी। अपने

काम में वह योग्य था। उसके हाथ से रोगियों को लाभ भी होता था। इस सब के वावजूद उसको नौकरी से हटा दिया गया। उसके स्थान पर एक नया डाक्टर नियुक्त हुआ।

यह नया डाक्टर वास्तव में ही डाक्टर था। त्याग उसके जीवन का मुख्य नियम था। वह सदा नियत समय से पूर्व हस्पताल पहुंच जाता और सायंकाल समय होने के पश्चात भी कुछ देर वहाँ रहता। धनी और निर्धन, हर एक से प्रसन्नता पूर्वक व्यवहार करता था। रोगी का ठीक निरीक्षण और रोग का पूरा निदान करता था। कई बार रोगियों की सेवा के लिए रातों को मीलों का सफर किया। किसी रोगी को दिखाने के लिए उसे रात को दो बजे भी जगाया जाय तो उसने शिकायत नहीं की। उसे कभी फ़ीस न दी गई तो उसने कभी मुख पर मलिनता के चिन्ह नहीं आने दिए। औषधि का मूल्य किसी ने नकद दे दिया तो ठीक है और किसी ने उधार मांगी तो भी इन्कार नहीं। बाज़ार में काम जा रहा हो या सैर के लिए जा रहा हो तो रास्ते में कोई रोगी मिल जाता तो वह अवश्य उसके पास ठहर कर उस का हाल भी पूछ लेता था।

एक डाक्टर के बारे में मैंने सुना था कि उसने अपने रोगी की प्राण रक्षा के लिए स्वयं अपने शरीर से रक्त निकाल कर उसके शरीर में दिया।

मैं यदि चिकित्सक होता तो मेरा भी सबसे बड़ा नियम त्याग ही होता!

(४)

आदर्श चिकित्सक धर्मान्धता से घृणा करेगा। अपना चाहे कोई भी धर्म हो, लेकिन हकीम या डाक्टर होते हुए वह हिन्दू, मुस्लिम, सिख और ईसाई रोगियों में किसी प्रकार का भेद भाव न रखेगा। जो भी रोगी उसके पास आएगा वह उसे

एक मनुष्य समझेगा और इलाज और व्यवहार में कभी अपने धार्मिक विश्वासों को हस्तक्षेप न करने देगा।

हिन्दुस्तान के विभाजन के समय जो बर्बर दंगे हुए उनमें एक डाक्टर की नवयुवती सुन्दर लड़की विधवा हो गई। मेरी लेखनी में इतनी शक्ति नहीं कि मैं उस अभागी लड़की के बाप की वेदना को शब्दों का रूप दे सकूं।

कुछ ही दिनों के पश्चात् मैंने उस सज्जन डाक्टर को एक घायल की मर्हम पट्टी करते देखा। घायल उससे भिन्न सम्प्रदाय का था। उसके सम्प्रदाय के लोगों ने डाक्टर की बेटी का सुहाग लूटा था। डाक्टर के सह-धर्मियो ने उसके पेट में छुरा घोंप कर अपनी ओर से उसका काम तमाम कर दिया था। उसे बड़ी खतरनाक हालत मे डाक्टर के पास पहुँचाया गया। डाक्टर केवल डाक्टर था—वह न हिंदू था, न मुसलमान और न सिख—उसने मनुष्य होते हुए एक मनुष्य को बचाने की चेष्टा की।

मुझे यह उदारता और सहिष्णुता अच्छी लगती है। मैं यदि चिकित्सक होता तो ऐसा ही होता।

मैंने कई डाक्टर और हकीम देखे हैं जो रोगियों को कुछ वस्तुएं खाने से इस लिए मना करते हैं कि उनका धर्म ऐसा कहता है। एक डाक्टर के बारे मे सुना है कि वह अंडा खाने के लाभ से ही इन्कार नहीं करता वरन् इसको बुरा कह कर इसे खाने की मनाही भी करता है। निश्चय ही वह इस विषय में दलील की बजाय भावुकता से प्रभावित होगा। एक डाक्टर अनीमिया के रोगी के लिए (Plastules) के प्रयोग का परामर्श तो देता है परन्तु उसे कलेजी का सूप नहीं खाने देता। इसी धर्मांधता से प्रभावित डाक्टर (Liver Extrast) के टीके लगाते भी देखे गये हैं। यद्यपि Plastules या

Liver Extract से कलेजी बहुत ही सस्ती पड़ती है और लाभ उतना ही होता है। यदि चिकित्सक धर्मान्ध न हो तो बड़ी आसानी से कलेजी का प्रयोग बता सकता है।

यदि मैं डाक्टर होता तो अपने अध्ययन, अनुभव और अनुसन्धान के आधार पर किसी इलाज के तरीके के विषय में अच्छी या बुरी राय बनाना तो अपना अधिकार समझता लेकिन किसी तरीके से अनभिज्ञ होने के बावजूद उसके विरुद्ध धर्मान्ध आलोचना को अपनी नैतिकता से अन्याय समझता।

मैं ने एलोपैथिक डाक्टरों को यूनानी तिब्ब का मजाक उड़ाते देखा है। मेरे एक मित्र ने बताया कि एक मैडीकल आफिसर उन्हें मिला जो यूनानी चिकित्सा विधि के अस्तित्व को ही स्वीकार नहीं करते।

यही दशा यूनानी हकीमों की है। उन में से अधिक चिकित्सा सम्बन्धी आधुनिक वैज्ञानिक अनुसन्धानों से लाभ उठाना पाप समझते हैं।

(५)

एक बार मैं ने एक योग्य डाक्टर से प्रश्न किया "एक अच्छे डाक्टर में कौन कौन से गुण होने चाहिए ?" उसने उत्तर दिया। "सहानुभूति, अध्ययन और शुद्ध चरित्र !"

अध्ययन का महत्व जतलाते हुए उसने कहा, संसार की कोई कला पूर्ण नहीं। मैडीकल साइंस अपूर्ण है। नए नए प्रयोग होते रहते है। नई खोजे पुराने ज्ञान को रद्द करती रहती हैं। दृष्टिकोण बदलते रहते है। रोग बदलते हैं और साथ साथ ही इलाज। एक अच्छे डाक्टर के लिए जरूरी है कि वह अपनी कला की नवीन खोजों के बारे में सूचित रहे और उनका प्रयोग करके उन से लाभ उठाये। पुरानी बातों को इतना पवित्र न समझने लगे कि उसका मस्तिष्क नवीन विचारों को स्वीकार ही न कर सके।

मैं चिकित्सक होते हुए अध्ययन को बड़ा महत्व देता। रोग निदान तथा औषधि विज्ञान के विषय में सर्वोत्तम एवं आधुनिकतम साहित्य का अध्ययन मैं अपने लिए अनिवार्य समझता। मेरी आय का एक बड़ा भाग इन पुस्तकों पर व्यय होता।

(६)

शुद्ध चरित्र प्रत्येक डाक्टर का आदर्श होना चाहिए। मैं ने एक डाक्टर के वारे में सुना था कि उस का चरित्र अच्छा नहीं। इसी कारण लोग उससे अपनी स्त्रियों का इलाज करवाना पसन्द नहीं करते थे। ऐसे ही एक डाक्टर की वात मुझे याद है।

एक नवयुवती वीमार थी उससे दो एक दिन वह औषधि लेती रही। उसके पश्चात् वह यह कह कर चली गई "मैं यदि मर भी जाऊँ तो कोई परवा नहीं, मैं उस से इलाज नहीं करवाऊँगी। मैं उसकी वक्र दृष्टि को सहन नहीं कर सकती।

इस प्रकार के उदाहरण हमारे हकीमो और डाक्टरों में प्रायः मिलते हैं। बड़े वड़े शहरों के अधिकतर डाक्टरों के वारे में कहा जाता है कि इनके औषधालय वास्तव मे वदमाशी के अड्डे होते हैं। यह दशा वड़ी दुःखद है और इस वात की द्योतक है कि सच्चरित्रता को अच्छे डाक्टर के गुणों में नहीं माना गया।

मैं यदि डाक्टर होता तो मुझे अपनी सच्चरित्रता पर गर्व होता। चरित्र से मेरा अभिप्रायः केवल लिंगमूलक चरित्र नहीं। इसमें साधारण शिष्टाचार भी शामिल है। उदाहरणार्थ मेरे लिए यह असम्भव होता कि रुपये के लालच से झूठा सर्टीफीकेट लिख कर दे देता या किसी के प्रभाव में आकर ऐसी रिपोर्ट या गवाही देता जो किसी मुकद्दमे मे किसी निर्दोष व्यक्ति के लिए कठिनाई का कारण वनती। मेरे लिए किसी सह-व्यवसाई के विरुद्ध ईर्ष्या या द्वेष की भावना से झूठा प्रचार करना भी कठिन होता। किसी

अन्य डाक्टर के ग्राहकों को बहकाना भी मैं बुरा समझता। इसके विपरीत मैं अपने व्यवसाय के लोगों के साथ ऐसा व्यवहार करता कि सभी मुझे अपना मित्र समझते, प्रति द्वन्द्वी नहीं। मेरे पास इस भावना के लिए भी कोई गुन्जाईश न होती कि मैं धनी रोगियों की ओर विशेष ध्यान देता और गरीबों से तिरस्कारपूर्ण व्यवहार करके उनका दिल दुखाता। मेरे मन में तो यह इच्छा रहती है कि मैं यदि डाक्टर होता तो गरीबों के साथ अधिक सहानुभूति रखता। उनके लिए किसी भी चीज का त्याग करने से न घबराता।

(७)

आदर्श डाक्टर के चिकित्सालय की स्वच्छता और व्यवस्था बड़ी आकर्षक होगी। यथा सम्भव समय के अनुसार कार्य करेगा। ऐसा न होगा कि जब मन में आया चिकित्सालय बंद कर दिया और फिर जब जी चाहा खोल लिया। रोगियों को कभी मिथ्या वचन न देगा। बड़ा स्वच्छ रहेगा और स्वभाव भी स्वच्छ रखेगा। स्वभाव से चिड़चिड़ा और भद्दा न होगा। त्योरी चढ़ाना पाप समझेगा। उसके व्यवहार में इतनी शिष्टता और उदारता होगी कि प्रत्येक रोगी मुझे अपना शुभचिंतक और हमदर्द समझ सकेगा और बे झिझक अपनी अवस्था मेरे समक्ष रखने के लिए प्रोत्साहित हो सकेगा।

वह किसी रोगी को निराश करना या बेलगाव आलोचना करना पाप समझेगा। मुझे उन चिकित्सकों पर 'बड़ा खेद होता है जो रोगियों को सांत्वना देने की बजाए उनको निराश कर देते हैं'। उनके मुख पर ही भयानक पूर्वोक्तियां करते हैं। और उन को स्वास्थ तथा जीवन से निराश करके उनकी आशाओं का हनन कर देते हैं। मैं उन्हें चिकित्सक नहीं समझता, हृदयहीन व्याध समझता हूं। अच्छा होता यदि वह डाक्टर न होकर वही होते।

मैं इस प्रकार के एक डाक्टर को जानता हूं। एक दिन वह एक रोगी से कह रहा था, "रोग अब इस अवस्था में पहुंच चुका है कि इससे छुटकारा पाना असम्भव है। परन्तु चिकित्सा जारी रखोगे तो तुम्हारे जीवन के शेष दिन सुख से कट जाएंगे।

एक दिन एक वृद्ध स्त्री उसके पास गई और कहने लगी, "डाक्टर साहब, मैं कोनीन नहीं खा सकती। यदि खाऊं तो मेरा सिर चकराने लगता है। किसी अन्य औषधि से मेरा इलाज कीजिए। कोई ऐसी दवा दीजिए जिस से शीघ्र लाभ हो। मुझे जल्दी पंजाब जाना है।" डाक्टर ने अपने माथे पर बल डालकर कहा, "बुढ़िया, अगर तुम कोनीन नहीं खाओगी तो तुम्हारी अर्थी ही पंजाब जाएगी। यह कोयटे का मलेरिया है, मजाक नहीं।"

एक व्यक्ति की छाती पर साधारण सी चोट आ गई। दुर्भाग्यवश वह उसी डाक्टर के पास गया। उसका विचार था कि डाक्टर कोई प्लास्तर आदि लगाएगा। मगर उसने स्टैथोस्कोप द्वारा निरीक्षण करके उसको क्षण भर के लिए परेशान कर दिया। कहा,—"देखिए साहिब, चोट तो ऊपरी चीज़ है। वास्तव में आपको प्लूरिसी की शिकायत है।"

रोग चाहे किसी भी अवस्था मे क्यों न हो एक आदर्श चिकित्सक रोगी को कभी भयभीत नहीं करता। "चिन्ता मत कीजिए। ईश्वर ने चाहा तो आप शीघ्र अच्छे हो जाएंगे"। "घबराने की कोई आवश्यकता नहीं। मामूली बात है। आप, चिन्तित न हों।" उसके इस प्रकार के वाक्य रोगी को सांत्वना देते हैं। मैं यह नहीं कहता कि चिकित्सक को झूठ बोलना चाहिए। परन्तु अनावश्यक सत्य भाषण को भी मैं पसंद नहीं करता। सारी सच्चाइयां व्यक्त करने योग्य नहीं होती। रोगी की दशा यदि निश्चय ही खतरनाक है तो कोई नैतिक या वैधानिक नियम

चिकित्सक को इस बात के लिए बाधित नहीं करता कि वह उसके मुख पर ही कह दे, "तुम्हारी अवस्था खतरनाक है" या यह कि "तुम्हारे बचने की कोई आशा नहीं।" जो चिकित्सक सत्य एवं स्पष्ट भाषण को इस रूप में इस्तेमाल करते हैं, उन्होंने सत्य की आत्मा को समझा ही नहीं।

चिकित्सक को आशा का अवतार होना चाहिए, निराशा का संदेश-वाहक नहीं।

(८)

भेद छुपा कर रखना भी चिकित्सक का एक उत्तम गुण है। उसके पास कई प्रकार के रोगी आते रहते हैं। उनमे से कुछ के रोग उनकी अपनी मूर्खता का परिणाम होते हैं। वह अपना रोग सर्व साधारण से छुपाना चाहते हैं। कुछेक रोगों के विषय में मनुष्य अपने सगे सम्बन्धियों को भी कुछ नहीं बताना चाहता।

एक स्त्री को कोई रोग था। वह नहीं चाहती थी कि उसके रोग का किसी को पता लगे। वह लोगों की रस्मी पूछताछ से घबराती थी। उसका विचार था कि इस से कोई लाभ तो हो नहीं सकता, क्यों व्यर्थ समय नष्ट किया जाए।

परन्तु वह जिस लेडी डाक्टर से इलाज करवा रही थी उसने अकारण ही किसी अन्य रोगी से उसकी बात कर दी। इसका फल यह हुआ कि उसकी परिचित सभी स्त्रियां उससे मिलने और सहानुभूति प्रकट करने के लिए आने लगीं और वह जिस कष्ट से बचना चाहती थी वही सामने आया।

एक चिकित्सक ने मुझे अपने एक रोगी के विषय में बताया कि वह एक लज्जाजनक रोग से ग्रस्त है। मैंने मन में सोचा कि यह व्यक्ति स्वयं भी तो एक दुखद रोग का रोगी है। इसे यह भी पता नहीं कि रोगियों के भेद चिकित्सक के पास अमानत के रूप

में हुआ करते हैं। उनको व्यक्त करना अमानत से धोखा करने के समान है।

मैं यदि चिकित्सक होता तो अपने रोगी की किसी भी गुप्त बीमारी का जिक्र किसी अन्य व्यक्ति से न करता। मैं समाज में उसके सम्मान को घायल करने को उतना ही बुरा समझता जितना उस पर घातक आक्रमण करता। मेरे रोगी मुझ पर विश्वास करते कि उनका मान सम्मान मेरे पास सुरक्षित है।

गृहस्थ जीवन

गृहथ के क्षेत्र मे पदार्पण करने के पश्चात प्रत्येक स्त्री पुरुष के सम्मुख यह प्रश्न होना-चाहिए कि अपने जीवन संगी को किस प्रकार के व्ययहार द्वारा सुखी और प्रसन्न रखा जा सकता है, किस प्रकार जीवन सुख मय बनाया जा सकता है। यह समस्या साधारण नहीं क्योंकि दम्पति जीवन के सफल या असफल होने का मनुष्य के व्यक्तित्व पर वहुत प्रभाव पड़ता है। एक हर्ष पूर्ण और सफल दम्पति जीवन व्यक्तित्व के सभी पहलुओं अर्थात स्वास्थ, चरित्र, उत्तर दायित्व, चौकसी और क्रिया शक्ति के विकास में सहायक होती है! इसके विपरीत असफल दम्पति जीवन मानव चरित्र पर वहुत वुरा प्रभाव डालते है। जिन लोगों का गृहस्थ सुखी न हो, वे प्रायः सुस्ती, आवारगी और कर्त्तव्य हीनता आदि आत्मिक एवं नैतिक रोगों मे ग्रस्त देखे गए हैं। वह जीवन को प्रसन्नता से विहीन, निरुद्देश्य तथा कष्ट दायिक समझने पर मजबूर हो जाते हैं।

फिर भी यह किस की इच्छा नहीं कि उसका जीवन दाम्पत्य सुखों से भरपूर हो ? ऐसा कौन है जिसके मन मे यह तड़प न हो कि उसे अपने जीवन संगी का अटूट आदर, विश्वास, प्रेम और सहयोग प्राप्त हो सके ? आवश्यक है कि अभिलाषा के साथ नियमों का ज्ञान और काम करने की शक्ति हो। इतनी ही नहीं इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए वड़ी सावधानी, आत्म नियन्त्रण, शांत स्वभाव और सोच विचार की आवश्यकत है।

सफल गृहस्त के नियमों के वर्णन मे पहले यह स्पष्ट कर देना

आवश्यक है कि मनुष्य यौवन काल में बुद्धि से अधिक भावुकता का नेतृत्व स्वीकार करता है। विवाह के प्रारम्भिक दौर में यह भावनाएं (इन का कारण चाहे लालित्य भावना हो अथवा शारीरिक आवश्यकता) चरम सीमा पर होती है। यह स्वीकार करने में कोई आपत्ति नहीं कि यह भावनाएं जीवन के लिए बुरी नहीं। लाभदायक है। परन्तु यह उस समय हानिकारक ही बन जाती हैं जब इनको मन की अस्थिर भावनाएं न समझकर जीवन का आनिवार्य और स्थाई अंग समझ लिया जाए। आज अनेक विवाहों की असफलता का कारण यही है कि लिंगात्मक एवं लालित्य भावना के प्रभाव को ही दाम्पत्य जीवन का सुख समझ लिया गया है। वास्तविकता यह है कि जिस प्रकार जीवन की अन्य शारीरक और मानसिक क्रियाएं बनती और मिटती रहती हैं, उसी प्रकार विवाहोपज भावनाएं भी अंत में अतिरेक छोड़ देती है। यह एक स्वाभाविक सी बात है और प्रकृति के नियमों के अनुसार होना भी ऐसा ही चाहिए। अतः विवाह के प्रारम्भिक दिनों के आमन्त्रण और आकर्षण की सदैव आशा रखना बहुत बड़ी भूल है। भाव तरङ्ग में परिवर्तन अवश्य होगा और बुद्धिमत्ता यही है कि इस परिवर्तन के साथ समझौता कर लिया जाए।

जिन नवयुवकों ने इस सीधी सादी परन्तु महत्त्वपूर्ण बात को समझ लिया हो उनको अपने गृहस्थ जीवन के बारे मे निराश होने की कोई आवश्यकता नहीं। निराशा उन्हीं लोगों के भाग्य में लिखी है जो विवाह के पश्चात् अपने आपको परिस्थिति के परिवर्तनों के लिए तैय्यार न कर सके। इस बात की व्याख्या के लिए एक उदाहरण देता हूं। यह एक मानी हुई बात है कि बच्चा पैदा होने के पश्चात् स्त्री की दिलचस्पी अपने पति में घट जाती है। बच्चा पैदा होने से पूर्व उसे जितना प्रेम पति के साथ होता

है। उसका बहुत सा भाग बच्चे को मिलने लगता है और बच्चे का जीवन ही उस के प्रेम और त्याग का केन्द्र बन जाता है। यह प्रकृति का एक महान, पवित्र एवं दोष रहित नियम है। यदि मां के मन मे इतना प्रेमोन्माद न होता तो मानव समाज के विकास मे बड़ी बाधाएं आतीं। परन्तु जो लोग इस प्राकृतिक नियम को विचार पूर्वक समझने की चेष्टा नहीं करते वे स्त्री की इस तब्दीली पर झुंझला उठते है और अपनी अर्धांगिनी के प्रेम को सदिग्ध मानकर ऐसा अनुचित व्यवहार करते हैं जो किसी भी आत्म सम्मान पूर्ण व्यक्ति को भला नहीं लगता।

दम्पति जीवन को सुखी बनाने का दूसरा नियम यह है कि अपनी पत्नि पर भूलकर भी कड़ी आलोचना न की जाए।

प्राय: लोगों को देखा गया है कि वह अपने स्वभाव के विपरीत छोटी से छोटी बात भी सहन नहीं कर सकते। दाल भाजी मे नमक मर्च कम या अधिक हो जाए, घर मे कोई वस्तु बे-ठिकाना रखी जाए। कोई काम करना भूल जाए या पत्नी के मुख से कोई ऐसा वाक्य निकल जाए जो उनकी अपनी बुद्धि के मापानुसार छोटा हो तो वे अपने क्रोध और अरुचि को छुपा नहीं सकते। कई बार तो कष्ट-दायक आलोचना द्वारा अपना मन हल्का करते है। कुछ लोग तो इस से भी आगे बढ़ जाते हैं और सम्बन्धियों, अतिथियों और बच्चों के सामने ही अपमान कर देते है। इस दुर्व्यवहार का प्रभाव क्या होता है? पत्नी के प्रेम का पुष्प सुगन्धि देने से पहले ही मुरझा जाता है। अमृत मे विष की बूंदे मिल जाती है। मन की अतृप्त आकांक्षाएं निराशा की गोदी मे सिर रखकर दम तोड़ देती है। वह मानसिक प्रेम जिसके सहारे जीवन जीवन कहलाता है सदा के लिए ठण्डा हो जाता है।

यह ठीक है कि गलतियां और त्रुटियां दूर होनी चाहिएं। यदि आपकी पत्नी मे कोई ऐसी आदत है जिसका दूर करना जरूरी

है तो आवश्यक नहीं कि आप आलोचना द्वारा ही ऐसा करें। यह व्यवहार रचनात्मक नहीं, ध्वंसात्मक है। बुद्धि और विचार से काम लेकर बहुत से ऐसे ढंग निकल आते हैं कि उसका दिल दुखाए बिना ही काम हो जाए। उदाहरणार्थ यदि आप अनुभव करें कि बीवी घर के सामान को व्यवस्थित ढंग से नहीं रखती। बरतन, किताबें और कपड़े इधर उधर बिखरे रहते हैं तो उसे यह कभी न जतलाया जाए कि वह सुघड़ नहीं। अच्छा यह है कि एकाध बार आप स्वयं ही इन चीजों को ठिकाने से रख दें। परन्तु ऐसा करते समय भी परिस्थिति का ध्यान रखना चाहिए। जैसे पत्नी के दो चार दिन के लिए अनुपस्थित होने या बीमारी के कारण काम न कर सकने से मिलने वाले अवसरों से आप लाभ उठा सकते हैं। साधारणतया तो कोई स्त्री अपने पति का ऐसा व्यवहार बर्दाश्त नहीं करेगी जिस से उसे महसूस हो कि उसे व्यवस्था सिखाई जा रही है। प्रत्येक आत्मसम्मान वाली स्त्री इसे अपना अपमान समझती है।

या एक और उपाय है। मान लीजिये बीवी ने आपको जिस प्याली मे चाय पिलाई है वह अच्छी तरह साफ नहीं। अब उसको यह बताने की बजाए कि प्याली अच्छी तरह नहीं धोई गई, यह अच्छा होगा कि आप बातों ही बातों में उसे यह समसूस करा दें कि स्वच्छता कितनी अच्छी चीज़ है। आप कह सकते हैं, आज एक मित्र के के साथ उनके घर जाने का अवसर हुआ। उन्होंने अन्दर से शर्बत मंगवाया। गिलास देखे तो बड़ी घिन आई। ऐसा लगता था जैसे कभी मांझे ही नहीं गए। चिकनाहट के धब्बे और उन पर अंगुलियों के चिन्ह ऐसे भद्दे लग रहे थे कि शर्बत पीने को जी नहीं चाहता था। गिलासों की ही क्या बात है, सारा घर ही उनकी पत्नि के फूहड़ पन की गवाही देता था। दीवारों पर फफूंदी लगी हुई, घर पर यत्र तत्र जाले, अलमारियां, कुर्सियां,

और बिस्तर गर्द से अटे हुए थे। तकिए मैले से भरे हुए थे। बैठक कबाड़ी की दुकान दिखाई पड़ती थी। अन्दर से उनका एक बच्चा निकला। वह इतना गंदा था मानो उसका मुंह कभी धुलाया ही नहीं गया। मैं तो यह सब कुछ देख कर बड़ा हैरान हुआ कि यह लोग कैसा जीवन बिताते हैं।

आलोचना न करना पति के लिये ही आवश्यक नहीं, पत्नि को भी इस नियम का ध्यान रखना चाहिए। ऐसी स्त्रियों की कमी नहीं जो अपने पतियों की आलोचना, उन पर दोषारोपण और उनकी शिकायते करके अपने हाथों अपने सुख की चिता तैय्यार करती हैं। उनका संसार कारागार से भी अधिक अंधेरी होता है। वह स्त्री वास्तव मे सद्बुद्धि विहीन है जो समझती है कि मैं अपने पति के दोष निकाल निकाल कर उसमे कोई परिवर्तन कर सकती हूँ। आलोचना का प्रभाव सदा उलटा ही होता है। फ्रांस का एक सम्राट नैपोलियन तृतीय अपनी पत्नी की निरन्तर आलोचना से इतना तंग आ गया था कि अपने राज प्रासाद मे उसके लिए आकर्षण ही शेष न रहा। वह गुप्त रूप से किसी अन्य स्त्री पर मुग्ध हो गया और प्रायः रात के समय चुप चाप वहां चला जाया करता था। अमरीका का प्रधान लिंकन भी जीवन भर अपनी पत्नि के दुर्व्यवहार से दुखी रहा। वह बड़ा शांत स्वभावी था। इस पर उसको अपनी पत्नि से घृणा करने पर विवश होना पड़ा। उसकी पत्नि अन्त मे पागल हो गई। टाल्स्टाय जीवन भर अपनी बीवी की गाली गलौच सहन करता रहा। परन्तु ८२ वर्ष की आयु में वह संतोष खो बैठा और चुप चाप घर से निकल गया। इसी यात्रा में वह नमूनिये से मर गया।

अतः आप यदि चाहते हैं कि आपका गृहस्थ जीवन सुख

और संतोष से बीते तो यथा सम्भव अपने जीवन साथी की कड़ी आलोचना न करें।

सफल गृहस्थी का तीसरा नियम यह है कि पति पत्नि एक दूसरे पर पूर्ण विश्वास रखें। जिस सम्बन्ध में परस्पर विश्वास नहीं, सूत के कच्चे धागे से भी अधिक बोदा और कमजोर है। परन्तु यह विश्वास कैसे बंध सकता है? सचाई से—मन, वचन, कर्म की सचाई से। यदि पति को पत्नि से और पत्नि को पति से कोई भेद छुपाना पड़े और झूठ बोलना पड़े या एक दूसरे में संदेह की गुंजायश हो तो इसका अर्थ यह है कि उन्हें एक दूसरे का मानसिक सहयोग प्राप्त नहीं। ऐसी अवस्था में जीवन बहुत नीरस होकर रह जाता है। कई लोगों की प्रकृति सदेहवान होती है। मैं एक व्यक्ति को जानता हूँ जो अपनी पत्नि पर बहुत कम विश्वास करता था। उसे अपनी सरकारी नौकरी के सिलसिले मे प्रायः दौरे पर बाहर जाना पड़ता। परन्तु जब भी वापस आता। अपने घर की एक एक चीज़ बर्तन तक भी गिन लेता। उसकी पत्नि प्रायः उसके साथ झगड़ती कि वह क्यों उसे चोर समझ कर उसका अपमान करता है। इन दोनों का असहयोग मुहल्ले भर मे चर्चा का विषय बना हुआ था। उनको न घर की शांति प्राप्त थी न बाहर का आदर।

हमारे देश की स्त्रियां आर्थिक तौर पर स्वावलम्बी नहीं रोटी और कपड़े के लिए अपने पतियों पर उसी प्रकार आश्रित हैं। जिस प्रकार बच्चे माता पिता पर। जहां जीवन स्वावलम्बी न हो वहां प्रायः झूठ बोलना पड़ता है। कई कठोर पति अपनी निर्दयता के बर्बर प्रदर्शन द्वारा पत्नि को झूठ बोलने पर विवश कर देते हैं। जिस प्रकार बच्चा गलती करके मार पीट के डर से या तो अपने दोष से मुकर जाता है या अपनी भूलें दूसरों के सिर पर थोप देता है। वैसे ही बेचारी स्त्रियां भी अपनी भूलों

को छुपाने के लिए भूठ बोलती हैं। मेरे एक मित्र की नई नई शादी हुई। उसने मुझे अपनी बीवी के बारे में बताया कि वह कभी कभी भूठ बोलती है। उसने दो एक घटनाएं भी बताई। विचार करने पर मालूम हुआ कि उसने जो भी भूठ बोला वह इस दृष्टि से बोला कि वह कठोरता और क्रोध से बच सके बाद में यह मित्र मेरे साथ सहमत हो गए।

आप अपने आपको इतना नर्म और नम्र बनाएं कि आपकी पत्नि को कभी भी आपके सामने भूठ न बोलना पड़े। स्त्रियों को मैं यह परामर्श दूंगा कि पति चाहे कितना भी कठोर क्यों न हो, वे यथा सम्भव भूठ न बोलें। जो स्त्री भूठ बोल सकती है वह अपने पति से रोटी, कपड़ा, रुपया, पैसा सब कुछ ले सकती है परन्तु हार्दिक आदर नहीं प्राप्त कर सकती। विश्वास से वह सदा वंचित रहेगी।

गृहस्थ जीवन मे प्रसन्नता लाने का चौथा नियम यह है कि अपने सगे सम्बन्धियों के सम्बन्धों और उनकी समस्याओं का पूरा पूरा आदर करे। हमारा घरेलू जीवन कुछ सामाजिक व आर्थिक आवश्यकताओं के कारण रिश्तेदारों के परस्पर सम्बन्धों से अनभिज्ञ नहीं रह सकता। यह सबन्ध छोटी छोटी बातों से बनते भी है और बिगड़ते भी। इनके बारे मे तनिक सी असावधानी करने से कई बार ऐसी उलझने पैदा हो जाती हैं कि उन पर काबू पाना कठिन हो जाता है। जो स्त्री पुरुष अपने गृहस्थ को सुखी और शांत बनाना चाहते हैं उन को चाहिए कि अपने परस्पर सम्बन्धों के अतिरिक्त अपने आस पास के सम्बन्धियों का भी पूर्ण आदर करे। उदाहरणार्थ स्त्री कभी यह सहन नहीं कर सकती कि उसके मुख पर उसके माता पिता की बुराई की जाए। मेरे एक प्रिय जन की पत्नी स्वयं ही अपने माता पिता की शिकायत किया करती थी। परन्तु, एक बार जब उसके पति ने ऐसी बात की तो वह सहन न कर

सकी। यहां तक कि उसकी आंखों से आंसू निकल आए। पुरुषों को समझ लेना चाहिए कि स्त्रियां इस विषय में बड़ी भावुक होती हैं।

उस स्त्री के दुर्भाग्य में क्या संदेह हो सकता है जो अपने पति और सुसराल की बुराई मायके में जाकर करती हो या अपने और अपने पति के रिश्तेदारों की अच्छाईयों बुराइयों का मुकाबला करने की आदी हो या सास ननदों की त्रुटियां पति के पास और पति की त्रुटियां सास ननदों के सामने बता देती हो। इस स्वभाव से बचना चाहिए। यह छोटी बड़ी चुगलियां स्त्री के सम्मान के लिए ही नहीं वरन् उस की प्रसन्नता के लिए भी घातक हैं। वह माता पिता बड़े बुद्धिमान हैं जो ससुराल की चुगली के मामले में अपनी लड़कियों को प्रोत्साहन नहीं देते।

प्रत्येक पति और प्रत्येक पत्नि का यह कर्तव्य है कि वह एक दूसरे के रिश्तेदारों और प्रिय जनों का पूरा पूरा आदर करें। प्रायः देखने में आता है कि यदि घर में पति के रिश्तेदार आ जाएं तो पत्नि उनके सत्कार मे कोई कसर नहीं उठा रखती। परन्तु यदि स्त्री के रिश्तेदार आएं तो पति कोई दिलचस्पी नहीं लेता। सम्भव है इसका कारण यह हो कि पति अपने घर में अपने रिश्तेदारों का अधिकार अधिक मानता हो। परन्तु न्याय का तकाजा यह है कि दोनों पक्ष के अतिथियों से समान व्यवहार किया जाए।

कई नव-विवाहित नवयुवक अपनी भावुकता पर काबू नहीं पा सकते। वह अपने माता पिता या बहिन भाईयों के मुकाबले में अपनी बीवी का पक्ष पात अधिक करेंगे। समय भी उसी को अधिक देंगे। बाजार से कोई वस्तु लाएंगे तो वह भी पत्नि ही के हाथ में देंगे। कुछ रिश्तेदारों और प्रियजनों से मेल जोल ही कम कर देते हैं। इस अनुचित व्यवहार का दण्ड उन्हें अवश्य मिलता है। जो व्यक्ति एक भरे घर के अन्दर अन्य सब की अवहेलना करके एक

विशेष व्यक्ति मे अपनी दिलचस्पी को समेटने की कोशिश करता है वह अपने चारों ओर ईर्ष्या के काँटे बोता है। अनेक नवयुवक इस मूर्खता का फल भुगत रहे हैं।

गृहस्थ को सुखी बनाने का पांचवां नियम यह है कि पति पत्नि एक दूसरे की भावनाओं, और इच्छाओं को उदारता ही नहीं आदर की दृष्टि से देखे। खेच तान से बचे। जो मांग पूरी हो सके, उसे पूरा करे। जो न हो सके, उसके लिए हठ न की जाए।

आजकल जीवन का स्तर तो ऊंचा हो रहा है लेकिन आय के साधन सीमित हो हैं। परन्तु यह एक कटु सत्य है कि वर्तमान काल की स्त्रियां बड़ी महंगी फैशन परस्ती की गुलामें हो रही हैं। पुराने जमाने की स्त्री जीवन भर में एक बार पांच सात सौ रुपये का जेवर बनवाती थी। हम उसे क्षम्य नहीं समझते लेकिन आजकल स्त्री उसके मुकाबले मे बहुत अधिक अपव्ययी है। वह ऐसी ऐसी चीजों पर रुपया बर्बाद करती है जिन से जीवन और मानवता को कोई लाभ नही पहुंचता। उस की मांगे अब इतनी बढ़ती जा रही हैं कि एक मध्यमश्रेणी का पति उनकी पूर्ति नहीं कर सकता। परिणाम यह है कि जहां पति पत्नि की मांगो को स्वार्थ और वासना प्रेम का फल समझता है, वहां पत्नि भी अपने पति के प्रेम को सशंक समझती है। यह परिस्थिति बड़ी कठिन है।

जहां स्त्रियों को यह परामर्श देना आवश्यक है कि वे चादर से बाहर पांव न फैलाएँ, वहां मर्दों को भी जमाने के बदलते हुए हालात और तकाज़ों को समझने का प्रयत्न करना चाहिए। अब संसार में वह स्त्री नहीं रहीं जो दाल दलिया खाकर, मोटा झोटा पहन कर सन्तोष पूर्वक जीवन व्यतीत कर ले। प्रत्येक युग की विशिष्ट सभ्यता होती है। कल की सभ्यता कल तक उचित थी। आज उसे हमारे सामने लज्जित होने की आवश्यकता नहीं। समय की बाढ़ जिन सामाजिक एवं सांस्कृतिक मूल्यों को अपने

साथ बहा ले गई है उन्हें किसी भी प्रकार लौटाया नहीं जा सकता। हमें नई कद्रों के अनुसार जीवन व्यतीत करना होगा। आय के अच्छे साधन निकाल कर जीवन का स्तर ऊंचा करना होगा। कोई भी स्त्री उस समय तक अपने पति से सन्तुष्ट न रह सकेगी जब तक कि आधुनिक संस्कृति के अनुसार उसकी मांगों की पूर्ति न की जाएगी। यह चीज़ पुरुषों से प्रेम की मांग करती है। क्या आप इसके लिए तैयार है।

भावनाओं और इच्छाओं की पूर्ति के सिलसिले में और भी कई चीजें आती हैं जिनका आपको ध्यान रखना होगा। यह आवश्यक नहीं कि पत्नि अपने पति की पसन्द और ना-पसन्द की गुलाम होकर रह जाए। सम्भव है जो कपड़े उसने पहने हों पति को पसन्द न हों। खाने पीने की जो चीजे वह पसन्द करती है, वह उनसे घृणा करता हो। कुछ विचार और विश्वास जो मायके के वातावरण से वह अपने साथ लाई हो वह उनसे मतभेद रख सकता है। इन छोटी-छोटी बातों में उसकी आजादी और चुनाव में किसी प्रकार भी हस्तक्षेप करना उचित नहीं। स्मरण रखिए कि यह गलती गृहस्थ के सुखों के लिए विष के समान है।

उदारता पर्याप्त नहीं, प्रशंसा करने की भी आदत डालें। मैंने दर्शन की एक पुस्तक में पढ़ा था कि मनुष्य को दो प्रकार की भूख लगती है, रोटी की और शरीर की। परन्तु अनुभव बताता है कि मनुष्य प्रशंसा का भी भूखा है। उसमें यदि यह भूख न होती तो संसार की सभ्यता अपने वर्तमान स्थान से बहुत पीछे होती। स्त्री में यह भूख पुरुष से बहुत अधिक पाई जाती है। वह अपने छोटे-छोटे कामों के लिए भी प्रशंसा चाहती है। वह अच्छा खाना बनाती है तो केवल खाने और खिलाने के लिए ही नहीं अच्छा लिबास पहनती है तो केवल अपने शौक के लिए नहीं बल्कि इसलिए भी कि उसका पति उसके पके हुए

खाने और उसके लिबास की प्रशंसा करे। कितने ही पति इस साधारण रहस्य से अपरिचित होंगे कि वह अनेक अवसरों पर अपनी अर्धांगिनि की प्रशंसा करके अपने जीवन को सुखमय बना सकते हैं। भूलना नहीं चाहिए कि स्त्री को अपना लिबास और उसकी प्रशंसा बहुत अधिक प्रिय है। एक अमरीकन लेखक ने लिखा है कि यदि किसी स्त्री को रास्ते में कोई दूसरी स्त्री आती हुई मिले तो वह यह नहीं देखेगी कि वह स्त्री कौन है, वरन् सब से पहले यह देखेगी कि उसने किस प्रकार के कपड़े पहन रखे हैं। स्त्री की बहुत बड़ी आकांक्षा होती है कि उसका पति कभी-कभी उसको अपनी पसन्द का कपड़ा भी ला दिया करे। यदि उसके लिबास और बनाव सिंगार मे कोई दिलचस्पी न ली जाए तो वह बहुत शीघ्र इस परिणाम पर पहुँचती है कि पति को उसके साथ प्रेम नहीं। यह अनुभूति उसके स्वास्थ, रुचि और सौंदर्य पर बुरा प्रभाव डालती है।

पति का मुस्कराता हुआ मुख प्रेमपूर्ण प्रशंसा और कभी-कभी दी हुई भेंट चाहे वह फूलों की माला ही क्यों न हो—यह ऐसी चीजें हैं जिन से स्त्री की आत्मा प्रभावित होती है। क्या आप इन बातों का ध्यान रखते है ?

गृहस्थ को प्रसन्नतापूर्वक निभाने का छठा नियम स्वास्थ्य है। स्वास्थ जीवन है और जीवन स्वास्थ। इन दोनों को एक दूसरे से अलग नहीं किया जा सकता। किसी रोगी शरीर में जीवित और प्रसन्न आत्मा अधिक समय तक नहीं ठहर सकती स्त्री पुरुष के बीच मनोरंजनपूर्ण व्यवहार उसी दशा में सम्भव है जब कि दोनों का स्वास्थ अच्छा हो। यदि एक का स्वास्थ खराब हो तो दूसरे के जीवन का सुख भी निश्चय ही मिट जाता है। बीमार लोगों के स्वभाव मे प्रसन्न मुखता की बजाय चिड़-

चिड़ापन, शिकायत बाजी, क्रोध और असन्तोप आ जाते हैं। इससे घर भर की प्रसन्नता नष्ट हो जाती है।

इसके बावजूद, मैं यह भी स्वीकार करूंगा कि कभी-कभी पति या पत्नी का बीमार हो जाना बहुत लाभदायक भी सिद्ध हो सकता है। इससे सुप्त सहानुभूति जागृत हो उठती है और प्रेम का सम्बन्ध अधिक दृढ़ हो जाता है और बुद्धिमान साथी इस अवसर से लाभ उठाकर बहुत-सी बीती हुई बेपरवाईयों, अवहेलनाओं और शिकायतों के धब्बे धो सकता है। परन्तु कई स्त्रियों को देखा गया है कि अपने पति की सहानुभूति प्राप्त करने के लिए वैसे ही बीमार बन बैठती हैं। प्रारम्भ में तो सम्भव है वह अपने उद्देश्य में सफल हो जाएं। लेकिन यदि यह स्थाई बात बन जाए तो पति के लिए इससे बड़ा और कोई बोझ नहीं हो सकता। वह निश्चय ही तंग आ जाएगा।

स्वास्थ के नियम बहुत सादे है। साधारण सा ध्यान देकर आप को अपने स्वास्थ होने का विश्वास हो सकता है। सैर, मनोरंजन, सादा खाना, स्वच्छता और आत्मिक पवित्रता आप के स्वास्थ को अच्छा रखेगी और आपके गृहस्थ जीवन में प्रसन्नता के फूल खिलाएगी।

अच्छे गृहस्थ जीवन का सातवां नियम यह है कि प्रेम के अमूल्य रिश्ते को सस्ता न होने दिया जाए। संसार में सस्ती चीजों की कोई हद नहीं। बहुत सी स्त्रियों का सम्मान केवल इस लिए कम हो जाता है कि वह भावातिरेक के वश अपने आप को बहुत सस्ता कर देती है। वह स्वावलम्बन के मूल्य से परिचित नहीं होतीं। उनका शरीर ही नहीं, आत्मा भी पति के हाथ में चली जाती है। वह न अपने आप की मालिक रहती हैं और न इरादे की। बात बात पर सदके जाती हैं, बलाएं लेती हैं और अपने सम्मान को गिराती हैं। यह सस्तापन

अंत में बहुत महंगा पड़ता है। पुरुषों का यह स्वभाव है कि वह सस्ते प्रेम की कद्र नहीं करते। वह बहुत शीघ्र संतुष्ट हो जाते है और महंगे प्रेम की खोज मे इधर उधर भटकते फिरते रहते हैं। क्या ही अच्छा हो यदि स्त्रियां उन से अपने प्रेम का थोड़ा बहुत मूल्य अवश्य ही ले लिया करें। कभी कभी रूठने, अपनी बात पर अड़ जाने, मानने की बजाए मनवाने, हठ करने बहाने करने या वर्ष भर मे दो एक बार मायके चली जाने या किसी अन्य रिश्ते दार के पास जाने से यह काम हो सकता है।

सफल गृहस्थी का आठवां नियम जिसका महत्त्व सर्वाधिक है यह है कि स्त्री पुरुष यथावश्यकता लिंगात्मक ज्ञान से परिचित हों। लिंग-संतुलन (Sex-Poise) स्त्री पुरुष के परस्पर सम्बन्धों पर गहरा असर डालता है। इस संतुलन और ज्ञान का अभाव कई बार बड़ी जटिलताएं उत्पन्न कर देता है। बड़े खेद की बात है कि हमारे देश मे ऐसा विश्वसनीय साहित्य पैदा नहीं हुआ जो लिंगात्मक समस्याओं मे नवयुवकों और नवयुवतियों का पथ प्रदर्शन कर सके। इस विषय पर जो पुस्तके मिलती है उन का न पढ़ना ही अच्छा है। पश्चिमी भाषाओं मे ऐसे साहित्य की कमी नहीं। उसका अध्ययन बड़ा लाभदायक सिद्ध हो सकता है।

यह कुछ मोटे मोटे नियम है और गृहस्थ जीवन की सफलता प्रायः इन्हीं पर निर्भर है। इसके अतिरिक्त सभी बाते ऊपरी हैं। जैसे कुछ लोगों का विचार है कि परस्पर निर्वाह के लिए स्त्री और पुरुष की सामाजिक और शैक्षिक स्थिति का समान होना आवश्यक है। परन्तु इस का सत्य होना कुछ संदिग्ध सा है। अनेक ऐसे व्यक्ति देखे गए हैं जो सामाजिक और शैक्षिक दृष्टि से बहुत ऊंचे थे, परन्तु उन्होंने साधारण बुद्धि की स्त्रियों के साथ बहुत अच्छा जीवन बिताया। कुछ लोग संतान को

बहुत महत्त्व देते हैं। परन्तु यह आवश्यक नहीं कि संतान के बिना गृहस्थ जीवन सफल ही न हो सके। कई लोग आयु के उचित अनुपात पर बहुत जोर देते हैं। मैं उन से सहमत हूँ परन्तु यह प्रश्न विवाह से पहले ही हल करना चाहिए। विवाह होने के पश्चात इस गुत्थी को सुलझाना कठिन है। आयु का अन्तर बहुत सी रंजशों, विषमताओं और बर्बादियों का कारण बन चुका है। अच्छा यह है कि गृहस्थ जीवन में उसे प्रविष्ट ही न होने दिया जाए। परन्तु यदि यह समस्या आ ही पड़े तो अपनी सभी शक्तियों को एकाग्रह करके स्थिति को सुधारने का प्रयत्न करना चाहिए।

सास और बहू

"जब मैं बहू थी तो सास अच्छी न मिली और जब मैं सास बनी तो बहू अच्छी न मिली।

सास बहू के झगड़ों पर यह रूसी कहावत पूरी उतरती है। घर की जटिलताओं में यह सबसे अधिक पेचीदा वैमनस्य है। एक बार प्रारम्भ हो जाये तो समाप्त होने का नाम नहीं लेता। विवाह से पूर्व बेटे को विवाह का इतना शौक नहीं होता जितना उसकी माता को। परन्तु जैसे ही यह काम हो जाता है, मां की आशाओं पर ओस पड़ जाती है। प्रायः देखा गया है कि विवाह के पश्चात् कुछ ही दिनों में घर की सारी खुशी मिट्टी में मिल जाती है। मां चाहती है कि बेटा उसका पक्ष ले और बहू की यह इच्छा होती है कि पति उसके हाथों में खेले। इस कशमकश में कुछ ऐसी गुत्थियां पड़ जाती हैं कि बुद्धि इन्हें खोलने में असफल रह जाती है। पिछले कुछ वर्षों के अन्दर २ मेरे कुछ मित्रों का विवाह हुआ है। मैंने जिस के भी घरेलू जीवन पर दृष्टिपात किया है, एक बात स्पष्ट दिखाई दी है। वह है सास बहू में परस्पर घृणा, उक्ताहट और आलोचना प्रत्यालोचना। ऐसा क्यों होता है? यह विचारणीय विषय है।

मनुष्य की अनेक कठिनाइयों और दुखों का सबसे बड़ा कारण उसकी अधिकार भावना है। स्वार्थवश वह अधिक से अधिक धन और ख्याति का मालिक बनना चाहता है। अपनी इस इच्छा की पूर्ति करने के पश्चात् वह नहीं चाहता कि दूसरे भी इसके भागी हो सकें। यह स्वार्थ यदि न होता तो उसका जीवन तो प्रसन्नता से परिपूर्ण होता ही, उसके आस पास के

लोगों में भी वही हर्ष बिखर जाता। परन्तु दुर्भाग्यवश उसके जीवन के इस अमूल्य सिद्धान्त की अवहेलना की है। उसका विशेष हर्ष और ध्यान उसके लिए दुख और उलझन बन गया। न वह स्वयं आनन्द प्राप्त कर सका और न दूसरों को प्रसन्न कर सका।

शादी के मामले में भी यही मनोवृति काम करती दिखाई देती है। एक नवयुवक का विवाह होता है। वह बहुत प्रसन्न है और प्रसन्नता उसका नैसर्गिक अधिकार है। परन्तु यह उसका दुर्भाग्य है कि वह उस प्रसन्नता को अपने ही अधिकार मे रखना चाहता है वह अपने माता पिता और बहिन भाइयों को इसमें शामिल नहीं करता। यहां एक सच्ची घटना का उल्लेख अनुचित न होगा। एक अच्छे स्मृद्ध घराने के एक नवयुवक का विवाह हुआ। विवाह से पूर्व इस छोटे से कुटुम्ब में परस्पर बड़ा स्नेह था। शाम को काम काज समाप्त करके घर के सब लोग एक साथ बैठकर खाना खाते, चाय पीते, रेडियो सुनते और बात चीत करते। विवाह के पश्चात इस नवयुवक में सहसा परिवर्तन आ गया। वह घर आते ही सीधा अपनी बीवी के कमरे में चला जाता वहीं खाना खाता, वहीं रात कटती और सवेरे मां बाप बहिन भाइयों को मिले बिना ही दुकान पर चला जाता। घर वालों ने महसूस किया कि उनके दैनिक जीवन में कोई न्यूनता पैदा हो गई है। इस न्यूनता की पूर्ति आवश्यक थी। हर्ष की मात्रा कम हो गई थी। उसका स्थान लेने के लिए वैमनस्य आगे बढ़ा। थोड़े ही दिनों मे माथे त्यौड़ियों से भर गए। फिर बातें होने लगी। ईर्ष्या, द्वेष, व्यंग कटाक्ष, खुला विरोध बढ़े। बात यहाँ तक बढ़ी कि बोरी बिस्तर उठाना पड़ा। सास बहू को दोषी ठहराती थी कि बेटा जिसकी मातृभक्ति मे कभी सन्देह न हुआ था, उसके आते ही आंखे फेर गया। यह उसी की कारस्तानी थी।

उस मित्र ने सभी घटनाएँ बड़े करुणापूर्ण स्वर में मेरे सामने रखीं और घरवालों के दुर्व्यवहार की शिकायत की। कहने लगा कि मैंने या मेरी बीवी ने कभी किसी मामले में पहल नहीं की। अपनी ओर से तो क्या कहना था कभी उनकी भली बुरी का प्रत्युत्तर नहीं दिया था। समझ में नहीं आता कि इस पर भी वे लोग पंजे झाड़ कर हमारे पीछे क्यों पड़ गए हैं। मैंने उत्तर दिया कि मैं यह मानने को तैय्यार नहीं कि पहल आपकी ओर से नहीं हुई। आपने उस हर्ष को जो सारे घर मे बटना चाहिए था अपने लिए रख लिया। आपने अपने माता पिता और बहिन भाइयों को अपने आनन्द मे शामिल कर लेते तो यह दुखद प्रतिक्रिया न होती, आप दोनों का यह कर्तव्य था कि खाने में, चाय मे, रेडियो सुनने मे, परस्पर वार्तालाप में और घर के अन्य छोटे-छोटे कामों में घरवालों का साथ देते। उस अवस्था में किसी को यह अनुभव न होता कि आप घर वालों से छीन लिये गए है और किसी अन्य प्रकार के हर्ष में लीन हो गए हैं। आप विवाह पूर्व के व्यवहार की पुनरावृत्ति करके अपनी भूल का प्रतिशोध कर सकते है।

इस परामर्श का कुछ सुपरिणाम तो निकला परन्तु वह पहले की सी बात न रही। दिलों के अन्दर द्वैत की जो रेखाएं खिच जाती है, वह मिटते मिटते ही मिट सकती हैं जो नवयुवक वैवाहिक जीवन प्रारम्भ करने वाले हों उनको आरम्भ से ही अपने व्यवहार का ध्यान रखना चाहिए। भूल करने के पश्चात उसका सुधार कठिन ही नहीं, कई बार असम्भव भी हो जाता है। इसलिए यही अच्छा है कि ऐसा काम न किया जाए जिससे कोई झगड़ा शुरू होने का भय हो बहू से भी अधिक सावधानी उसके पति को करनी चाहिए। जब तक वह कवांरा था, माता पिता उसकी बेपरवाई, सुस्ती, अवहेलना आदि को आसानी से क्षमा कर देते थे।

परन्तु विवाह के पश्चात् उसकी साधारण सी अवहेलना गम्भीर भ्रम उत्पन्न हो सकते है। ऐसे हर अवसर पर यह समझा जाएगा कि विवाह ने उसे माता पिता से दूर खेंच लिया है। इसलिए उसे माता के सम्मान, सेवा, सत्कार और प्रसन्नता की ओर पहले से भी अधिक ध्यान देना चाहिए।

जैसे ही किसी घर में बहू प्रविष्ट होती है, सास को अपने प्रभाव और अधिकार की चिन्ता शुरू हो जाती है। इससे पूर्व वह घर के सारे मामलों पर एक च्छत्र राज्य करती थी। परन्तु बहू के आ जाने से उसे ऐसा महसूस होने लगता है जैसे उसके जीवन मे एक प्रतिद्वन्दी आ गया हो। वह चाहती है कि जिस प्रकार उसका पति वर्षानुवर्ष तक उसका परामर्श लेता आया है, उसकी सन्तान उसकी आज्ञाकारिणी हो। यह भावना कुछ हद तक गलत है परन्तु इसके स्वाभाविक होने मे कोई संदेह नहीं। दूसरी ओर बहू यह समझती है कि मैं इस घर में लौंडी बन कर नहीं आई। उसे अपने नवीन विवाह, पति के प्रेम और कभी कभी अपने घराने का भी अभिमान होता है और इस अभिमान को चोट लगते वह नही देख सकती। जब यह दोनों भावनाएं टकराती हैं तो अधि-कार का संघर्ष प्रारम्भ हाता है।

कुछ लोगों का विचार है कि घर के अधिकारों को सास और बहू के बीच बांट कर यह कठिनाई दूर की जासकती है। परन्तु इससे जटिलता बढ़ती है, घटती नहीं। इसका ठीक और मनो-वैज्ञानिक हल यह है कि दोनों पक्षों मे से एक का व्यवहार ऐसा हो जिससे दूसरा यह समझे कि इसे अधिकार पाने को कोई इच्छा नहीं। यदि सास ऐसा व्यवहार अपना सके तो अच्छा है। यद्यपि इसकी आशा बहुत कम है। अन्यथा बहू को अवश्य ही ऐसा करना चाहिए। संसार की प्रकृति बड़ी विचित्र है। कुछ मागा जाए तो देने के लिए तैय्यार नहीं परंतु न मागा जाए तो स्वयं ही मिल जाता है। यदि बहू अपने व्यवहार

से यह दिखा दे कि उसे अधिकार की आकांक्षा नहीं और उसे घर के मामलों पर राज्य करने की कोई इच्छा नहीं तो सास के मन से भी अधिकार का लोभ अपने आप गिर जाएगा। वह महसूस करेगी कि जिस चीज़ को बहू इतना मामूली समझती है, मैं उसे क्यों संभालती फिरूं ? इस का फल यह होगा कि जो कुछ वह मांगने और झगड़ा करने पर बहू को न देती अब अपने आप ही उसके हवाले कर देगी।

प्रभाव और अधिकार का प्रश्न प्रत्येक घर में उस के सांस्कृतिक विकास के अनुसार भिन्न प्रभाव डालता है। इसका महत्त्व बहुत कुछ सास के मानसिक झुकाव, स्वास्थ और शिष्टाचार पर आधारित होता है। घर की सांस्कृतिक और आर्थिक अवस्था भी इस पर बहुत प्रभाव डालती है। एक बुद्धिमति बहू और उसके पति का यह कर्तव्य है कि वह इन सब बातों का ध्यान रखे। जैसे, यदि सास यह चाहती है कि बहू खाने पीने, कपड़े लत्ते और दावतों आदि मे जाने के बारे मे उस से पूछ लिया करे। यदि उसकी यह मांग पूरी कर देने से उलझनें और कठिनाइयां दूर होती हों तो आज्ञा मांग लेने मे कोई आपत्ति नही। घर के मामलों मे भी यदि उसकी राय ले ली जाय तो इस से मानसिक वेदना तो अवश्य होगी परन्तु प्रारम्भ मे एक समय ऐसा भी आएगा जब सास मे उदारता अपने आप ही पैदा हो जाएगी।

इस सम्बन्ध मे नैतिक और रस्मी कद्रों की कभी अवहेलना नहीं करनी चाहिए। पुरानी कद्रें प्रत्येक काल में टूटती रहती है परन्तु उन्हे निर्दयता से तोड़ना अच्छा नहीं। हमारे सांस्कृतिक जीवन की कई परम्पराएं शताब्दियों से चली आ रही है। नई पौद उनका विरोध करती हैं तो उसकी राह मे सब से बड़ी बाधा यह 'प्रभाव' का पत्थर होता है। इस पत्थर को तिरस्कार पूर्वक ठुकराने की बजाए समझ के साथ उसे हटाने का यत्न करना

चाहिए। हर पुरानी परम्परा को दलील, औचित्य, आदर और लचक के साथ ही जीवन के क्षेत्र से निकालना अच्छा होगा। तुरंत परिवर्तन पर हठ नहीं करनी चाहिए।

कई नवयुवक बेकार होते हुए भी विवाह के लिए तैय्यार हो जाते हैं। उन्हें आने वाली कठिनाईयों का अनुमान नहीं होता। इस कारण उनको तो क्षमा किया जा सकता है। परन्तु वह माता पिता जो बिना सोचे समझे बेटे के पांव में बेड़ियाँ डाल देते हैं, क्षमा नहीं किए जा सकते। उनके लिए एक बेटे का बोझ उठाना ही कठिन था। अब उसके साथ एक और प्राणी की पालना करनी पड़ती है। इससे बहुत-सी कठिनाइयाँ उत्पन्न होती है प्रारम्भ में चाहे इस बात को सहन कर लिया जाए। परन्तु कब तक ? बहू के साथ जैसे ही कोई झगड़ा हुआ, उसे पति समेत कटाक्ष-बाणों का शिकार होना पड़ता है। बहू कुछ खाने या पहनने की इच्छा प्रकट करे तो सास कचोके देती है कि आखिर किस बिरते पर चाव निकालती हो ? फिर यह एकाध दिन की बात हो तो बर्दाश्त हो सकती है। आए दिन की बला को कौन टाले ? आते में इससे वह घृणा और खिचाव पैदा हो जाता है जिसका इलाज सम्भव नहीं। परिस्थितियाँ सदा एक-सी नहीं रहतीं। उसी सास को जब बहू पर आश्रित होना पड़ता हो तो बहू गिन-गिन कर बदले लेती है।

अतः जो नवयुवक इस दुखद परिस्थिति से सुरक्षित रहना चाहें, उन्हें तभी विवाह करना चाहिए जब आर्थिक तौर पर स्वावलम्बी हो जाएं, और अपनी कमाई से अपने सारे शौक पूरे कर सकते हों। यदि घर के झगड़ेहद से बढ़ जाएं और उनको पृथक रहने पर मजबूर कर दिया जाए तो वैसा भी कर सकें।

मानसिक और सांस्कृतिक गुणों का अन्तर भी सास और बहू में झगड़े का कारण बन सकता है। जैसे यदि बहू पढ़ी लिखी

हो और सास अपढ़ हो तो बहू की यह विशेषता सास के मन में ईर्ष्या पैदा करेगी, या अगर बहू खाने पकाने में, घर की देख-भाल मे, स्वच्छता और व्यवस्था में सास से बढ़ गयी और सुसराल के लोग तथा पड़ोसी उसकी प्रशंसा करने लगे तो सास इस पर गर्व अनुभव करने की बजाए अपमानित महसूस करेगी। यह हीन भावना प्रायः ओछे विरोध का रूप ले लेती है।

यदि किसी घर में इस प्रकार की उलझन पैदा हो जाए तो यह समझना चाहिए कि इससे निकलना आसान नहीं, मैंने एक सास के बारे मे सुना था कि वह केवल इस कारण रुष्ट रहती थी कि उसकी बहू अपने पति को और उसका पति उसको 'तुम' की बजाए 'आप' क्यों कहता है। इस आलोचना का कारण भी सहज ही मिल गया। वह यह कि सास ने जीवन भर कभी अपने पति को 'आप' कह कर नहीं बुलाया था। न उसके पति ने ही उसे 'आप' के योग्य समझा था। उसे दुख यह था कि जो सम्मान मुझे कभी नहीं मिला, वह मेरी बहू को क्यों मिला?

इसी प्रकार की परिस्थिति मे किसी बहू की मानसिक और नैतिक योग्यता की परीक्षा होती है। इस परीक्षा का पहला तक़ाजा यह है कि अगर सास किसी हीन भावना के कारण आलोचना या विरोध करे तो उसका कोई उत्तर न दिया जाए। इसके विपरीत उसके साथ इतना अच्छा व्यवहार किया जाए कि उसे नाराज होने का अवसर ही न मिले। उदाहरण के तौर पर यदि कोई सास इस बात से ईर्ष्या करती हो कि उसकी बहू घर के काम काज मे प्रशंसनीय दिलचस्पी लेती है तो उससे निपटने का ढंग यह है कि बहू की जब भी प्रशंसा हो तो वह उस पर गर्व करने की बजाए यह प्रकट करे कि वह जो कुछ करती है अपनी सास के कारण करती है। या यदि उपरोक्त परिस्थिति हो जिस मे आपसी वार्तालाप मे आदर पूर्ण शब्दों के कारण ईर्ष्या पैदा हुई हो तो उसका कारण

स्पष्ट है कि वह अपने पति की ओर से आदर नहीं पा सकी । आदर की इस भूख ने ईर्ष्या का रूप धारण कर लिया है। उसके द्वेष और क्रोध को दूर करने का एक मात्र उपाय यह है कि बहू और उसका पति मिलकर उस का इतना आदर करें कि उसकी भूख मिट जाए।

परन्तु प्रायः यह व्यवहार नहीं अपनाया जाता। इसके विपरीत बहू अपने सुसभ्य होने पर गर्व करती है और सास के पुराने तरीकों पर नाक चढ़ाती रहती है। उसके यह रंग ढंग जलती पर तेल का काम करते हैं। ऐसी आग भड़कती है जिसके शोले वर्षों तक नहीं बुझते।

यदि न्याय की दृष्टि से देखा जाए तो मानना पड़ेगा कि घरेलू परिस्थिति का संतुलन बनाए रखने में बहू के मुकाबले मे सास की जिम्मेदारी अधिक होती है क्यों कि वह स्वयं बहूपने का जीवन देख चुकी होती है। और उससे यह आशा की जाती है कि अपने अनुभव से वह समझ गई होगी कि सास को बहू की कौनसी भावनाओं का ध्यान रखना चाहिए। उस का कर्तव्य है कि वह अपनी सास के जिस रवैय्ये को अन्याय पूर्ण समझती थी वह स्वयं अपनी बहू के बारे में न अपनाए। जिन कटाक्षों से उसका अपना दिल दुखता था, उनका पुनः प्रयोग न करें। जिस प्रकार के आदर, सुख, हर्ष और चाव को वह अपना अधिकार समझती थी, वही आदर, सुख, हर्ष और चाव उसको दे। यदि वह ऐसा नहीं करेगी तो उसका पहला जीवन तो नीरस था ही, अगला भी कटुता और निराशा से भरा हुआ रहेगा।

इस बात का पूरा ध्यान रखा जाए कि बहू के मस्तिषक को कोई धक्का न लगे। उसकी गलती पर क्रुद्ध होने की बजाए उससे सहानुभूति की जाए। कई घरों में बहू की छोटी छोटी गलतियों पर भी तूफान खड़ा कर दिया जाता है। दाल भाजी

में नमक मर्च कम या अधिक हो जाए, कोई वस्तु गिर कर टूट जाए या भूल से कोई काम समय पर न हो सके तो बहू बेचारी की मुसीबत आ जाती है। उसे फूहड़ और निकम्मी कहा जाता है। यह अन्याय है और अन्याय की चरम सीमा।

अगर सास समझती है कि उसकी बहू मे कुछ अप्रिय त्रुटियां हैं, वह सुघड़ नहीं, किफायत नहीं करती, बड़ी बूढ़ियों का उचित आदर नहीं करती, घर मे पूरी दिलचस्पी नहीं लेती, तो उस का अर्थ यह नहीं कि उसे सब के सामने लज्जित करने का प्रयत्न किया जाय। वरन् उस का इस ढंग से विकास किया जाए कि वह घर के अन्य सदस्यों के सामने अपमानित न हो। गलतियों के सुधार का उचित ढंग उन का चमकाना नहीं बल्कि उनकी उपेक्षा करना है।

बहू का प्रेम और आदर पाने के लिए केवल उसी के सद्व्य-वहार पर्याप्त नहीं, उसके पति के साथ भी अच्छे से अच्छा बर्ताव करना होगा। बहू यदि अपने पति से प्रेम करती है तो वह अपनी आंखों के सामने उसका अनादर सहन न करेगी। सास को अपने विवाहित बेटे के साथ बहुत अच्छा व्यवहार करना चाहिए। कोई ऐसी बात नहीं करनी चाहिए जिसे बहू अपने पति का निरादर समझे और उसका मन मैला हो।

बहू को सुघड़ और क्रमशील आलोचना से नहीं सहानुभूति से बनाया जा सकता है। उसको शुभ चिन्तक और आज्ञा कारी बनाने के लिए उसकी बुराई करने की बजाए उसकी त्रुटियों को छुपाना अधिक उपयोगी है। उसके मन की भावनाएं भक्ति प्रेम और प्यार से जीती जा सकती हैं घृणा और तिरस्कार से नहीं। व्यंग और कटाक्ष से नहीं बल्कि उदारता और प्रशंसा से वह नि:स्वार्थ सेवा करेगी।

शिशु पालन

जन्म से पूर्व

बुद्धिमानों का विचार है कि शिशु पालन उसी समय से प्रारम्भ हो जाता है जब प्रकृति उसके शरीर को मां के पेट के सुपुर्द कर दे। इस दौरान मे कुछ बातों का ध्यान रखना गर्भवती स्त्री के स्वास्थय के लिए ही आवश्यक नहीं, बालक के स्वास्थय के लिए भी अनिवार्य है।

सर्वप्रथम सावधानी यह करनी चाहिए कि इन दिनों में यथा सम्भव ब्रह्मचर्य का पालन किया जाए। ऐसा न करने से बहुत सी ऐसी शक्ति जो जातक के पोषण में लगनी चाहिए, उस में नहीं लगती। और वह दुर्बल हो जाता है। चिकित्सा की पुस्तकों में पहले और अन्तिम दो महीनों में विशेष तौर से सावधान रहने की हिदायत की गई है। अन्तिम महीनों मे तो चौकसी अनिवार्य है। असावधानी करने से कई बार ठीक समय से पूर्व ही बालक का जन्म हो जाता है।

मन की शांति यदि साधारणतया आवश्यक है तो गर्भ के दिनों में तो अत्याधिक आवश्यक है। गर्भवती स्त्री को चाहिए कि वह हर मामले में संयम से रहे। असाधारण चिन्ता ही नहीं असाधारण हर्ष भी शिशु के स्वास्थय के लिए हानिकारक है।

इतना परिश्रम भी न किया कि शरीर थक कर चूर हो जाए और यह अवस्था भी नहीं होनी चाहिए कि आठों पहर बिस्तर पर ही पड़ी रहे। संयम के साथ प्रातः सायं खुले मैदान या बाग में सैर और मनोरंजन बहुत लाभकारी है।

गर्भवती स्त्री के विचार सुन्दर हो। उसकी वाणी मधुर हो।

लड़ाई झगड़े से दूर रहे और शिकायतें करने से भी बची रहे। छोटी छोटी बातों से दुखी न हो। सब से बड़ी बात यह है कि अपने मन और मस्तिष्क को होने वाले बच्चे के बारे में सुन्दर स्वप्नों और आशाओं से परिपूर्ण रखे।

गर्भ के दिनों में उसे अपने स्वास्थ और खाने के विषय में बहुत सावधान रहना चाहिए। कुछ स्त्रियां यह समझती हैं कि पेट में बच्चा होने के कारण उन्हे असाधारण खुराक की आवश्यकता है। दिन भर उनका मुंह चलता रहता है। यह आदत स्वास्थ के लिए घातक है। इस विचार में कोई तथ्य नहीं कि समय असमय खाते रहने से बच्चा खूब मोटा ताजा पैदा होगा। खुराक के बारे में इतनी ही सावधानी होनी चाहिए कि वह अच्छी हो और सुथरी हो। सब्जियां, मांस, अंडे, ताजे फल (विशेष कर संगतरे) यह सब चीजे इस्तेमाल की जा सकती है। परन्तु दूध इन सब से अधिक आवश्यक है। सख्त, देर से पचने वाली, नफ़ख़ और कब्ज़ पैदा करने वाले पदार्थ खाना बहुत बुरा है।

गर्भ के अंतिम तीन चार महीनों मे गर्भ-वती स्त्रियों को प्राय: कब्ज़ की शिकायत हो जाती है। इसका मुख्य कारण यह है कि जातक का बोझ अंतड़ियों पर पड़ता है और वह आसानी से अपना काम जारी नहीं रख सकतीं। यदि खुराक प्रारम्भ से ही हल्की और शीघ्र पाचक रही हो तो कब्ज़ अधिक नहीं सताती। प्रात. काल उठकर पानी का एक गिलास पी लेने से भी कब्ज़ दूर हो जाती है। सैर करने की आदत भी इसका अच्छा इलाज है। लेकिन अगर कब्ज़ इतनी सख्त हो कि इन उपायों से दूर न हो तो तोला डेढ़ तोला बादाम रोगन दूध मे डालकर पी लेने से दूर हो जाएगी। बादाम रोगन औषधि और पोषक खाना दोनों का काम देगा। गुलकंद भी कब्ज़ दूर करने मे उपयोगी है।'

इन दिनों में कपड़ों और शरीर को स्वच्छ रखने का खब्त भी हो जाए तो कम है। लिबास के बारे में इतनी सावधानी पर्याप्त है कि ऋतु के अनुसार हो। सर्दियों में पर्याप्त गर्म और गर्मियों में ठण्डा व हल्का। अत्याधिक कसा हुआ और भारी लिबास उचित नहीं।

शिशु के जन्म के समय न जाने कितना कष्ट होगा, वह कष्ट सहन भी हो सकेगा या नहीं इस प्रकार का भ्रम मां और बच्चे दोनों के स्वास्थ के लिए हानि कारक है। हमारे देश में प्रसूति का अवसर बड़ा कठिन समझा जाता है। अनेक स्त्रियां उसे जन्म मरण के बीच का समय समझती है। जैसे जैसे दिन पास आते जाते हैं, गर्भ वती के मन में भय और बेचैनी का दबाव भी बढ़ता जाता है। प्रसूति के खतरों से वह सहम जाती है और उसके स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है। और स्पष्ट है कि यदि मां का स्वास्थ अच्छा नहीं रहेगा तो बच्चे का भी निश्चय ही खराब हो जाएगा।

बालक का जन्म एक प्राकृतिक क्रिया है। और इन क्रियाओं का यह गुण होना चाहिए कि वह जीवन के लिए हानिकारक या घातक सिद्ध न हों वरन् उसको सुदृढ़ बनाने में सहायक हों। यदि कोई प्राकृतिक क्रिया अपनी सीमा के अन्दर रहे तो उस मे भय और पीड़ा का स्थान बहुत कम होना चाहिए। परन्तु खेद तो यह है कि मनुष्य ने इस स्वाभाविक एवं प्राकृतिक क्रिया को भी अपने विचित्र विश्वासों और भ्रमों के सम्मिश्रण से एक भयानक आपत्ति का रूप दे दिया है। जैसे जैसे मानव सभ्यता का विकास हो रहा है प्रसूति आसानी और सहूलियत के विश्वास से वंचित होता जा रहा है। गर्भ वती स्त्रियों को इस कष्ट से बचाने के लिए भांति भांति के टीके, अचेत और सुन्न करने वाली औषधियां तैय्यार की जा रही है।

वैज्ञानिकों का ही एक दल इन "वैज्ञानिक आविष्कारों" के विरोध पर उत्तारू हो गया है। उनका विश्वास है कि क्लोरो-फार्म, टीकों तथा अन्य ऐसी औषधियों ने मानवता को बहुत हानि पहुंचाई है। उनके अनुसार इन अप्राकृतिक तथा स्वास्थ घातक वस्तुओं के प्रयोग की बजाए स्त्रियों को अपनी मानसिक एवं प्राकृतिक शक्तियों पर विश्वास करना चाहिए। प्रसव पीड़ा के बारे मे आस पास की भयानक रूढ़ियो से प्रभावित नहीं होना चाहिए। स्त्रियो मे यह रोग बहुत है कि वह अपने अनुभव और कठिनाई को बहुत बढ़ा चढ़ा कर बताती रहती हैं। यह कहानियां उन स्त्रियों के लिए बहुत भयङ्कर सिद्ध होती है जिन को यह अनुभव प्रथम बार होना हो। कई बार इसका परिणाम बहुत बुरा होता है।

प्रसूति की आवश्यकताएं

प्रसूति से दो चार सप्ताह पहिले ही निम्न लिखित आवश्यक वस्तुएं ले आनी चाहिएं :—

१. दो मोम जामे, एक अपने लिए और एक बच्चे के लिए ताकि बिस्तर पेशाब आदि से खराब न हो।

२. एक साधारण पालना।

३. दो रूई दार गद्दे बच्चे के लिए। सर्दी हो या गर्मी, यह आवश्यक है।

४. शरीर की सफाई के लिए धुनकी हुई सफेद रूई।

५. बच्चे के लिए दो बहुत नर्म तौलिए।

६. एक छोटी रजाई और एक छोटा कम्बल (यदि सर्दी हो)

७. कार्बालिक सोप।

८. मलमल या सफेद खद्दर की पट्टी, ४½ फुट लम्बी और एक फुट चौड़ी, अपने लिए और फलालैन या नरम कपड़े का एक टुकड़ा जिस में बच्चा लपेटा जा सके।

९. सेफ्टी पिन या बक्सूए ।

१०. बच्चे की नाल काटने के लिये एक तेज़ कैंची और नाल बांधने के लिये ऊन की एक गुच्छी या मजबूत धागा ।

११. गर्म पानी की बोतल, चिलमची आदि ।

१२. कम से कम आधी दरजन लंगोटियां ।

इन सब चीज़ों को पहले से ही तैय्यार रखना आवश्यक है। अगर ऐसा न किया जाय तो कई बार ठीक समय पर बड़ा कष्ट उठाना पड़ता है ।

प्रसूति के पश्चात्

गर्भ के दिनों में ही नहीं, जन्म होने के पश्चात् भी बच्चे का स्वास्थ मां के स्वास्थ पर निर्भर होता है क्योंकि बच्चा मां से ही अपनी खुराक लेता है। मां का स्वास्थ अच्छा न होगा तो उसे स्वास्थ प्रद दूध नहीं मिल सकेगा और उसका पोषण ठीक न होगा ।

सूतक के दिनों में हमारे घरो में दो चीज़ों पर बड़ा जोर दिया जाता है। एक यह कि स्त्री जितने भी तले हुए और भारी खाने खा सकती है खाए। घी खाने में डाल कर ही नहीं दिया जाता, दूध में डालकर भी पिलाया जाता है। इसके अतिरिक्त पंजीरी खिलाई जाती है। वस्तुतः घी और पंजीरी जैसे देर-पच पदार्थ उस स्त्री के स्वास्थ के अनुकूल नहीं। फिर जैसा उसका खाना होगा वैसा ही दूध। यदि उसको भारी और देर-पच खुराक दी जाएगी तो दूध मे भी यह दोष होंगे। इसलिए स्त्रियों को सूतक के दिनों में हल्की और शीघ्र पचने वाली चीज़ें खानी चाहिएं ।

दूसरा हानिकारक रिवाज यह है कि स्त्री को अनावश्यक तौर पर आराम करने पर मजबूर किया जाता है। प्रायः कहा

जाता है कि उसे पूरे चालीस दिन बिस्तर पर पड़े रहना चाहिए। एक लेखक लिखता है कि स्त्री ९ महीने तक एक बोझ उठाये रखती है और शिशुप्रसव-पीड़ा उसे निढाल कर देती है। इस लिए कम से कम डेढ़ महीना उसे पूर्ण विश्राम की आवश्यकता है। परन्तु आधुनिक अनुसंधान ने इसे गलत प्रमाणित कर दिया है। यदि प्रसूतिकाल सुखपूर्वक निकल जाए और कोई कष्ट न हो तो बिस्तर पर पड़े रहने का कोई लाभ नहीं। पांच सात दिन के अन्दर अन्दर ही बच्चे की देख भाल सैर आदि शुरू कर देनी चाहिए।

Your Life नामक एक अमरीकी पत्रिका में Early to rise after Childbirth' शीर्षक से एक दिलचस्प लेख छपा है। उसमे इस विषय पर विस्तारपूर्वक लिखा गया है कि शिशु-जन्म के पश्चात् स्त्री को कितनी देर तक विश्राम करना चाहिए। लेखक ने लिखा है :

बच्चा होने के पश्चात् स्त्री को शीघ्र बिस्तर से उठ जाने के विषय मे बाल्टीमोर के डाक्टर रोटस्टाइन ने अमरीकन एसोसीएशन जरनल के २२ जुलाई १९४४ के अंक में अपनी रिपोर्ट प्रकाशित करवाई है। बाल्टीमोर के स्त्रीय हस्पताल मे उसने १५० स्त्रियों पर प्रयोग किया। इन स्त्रियों को बच्चा होने के बाद तीसरे या चौथे दिन बिस्तर छोड़ने और पांचवें दिन चलने फिरने की आज्ञा दे दी गई। छठे या सातवें दिन उन्हे अपने अपने घरों को भेज दिया गया। उनके स्वास्थ पर कोई बुरा प्रभाव नहीं देखा गया। डाक्टर रोटस्टाइन का कहना है कि उन स्त्रियों का स्वास्थ काफी अच्छा था और वह अपनी और अपने बच्चों की देख भाल के लिए पूर्णतः ठीक अवस्था मे थीं।"

अत्याधिक विश्राम शरीर मे कमजोरी और थकावट पैदा

करता है। मनका झुकाव सुस्ती की ओर हो जाएगा और इससे
शरीर और मस्तिष्क थकान महसूस करेंगे।

इसके आगे उन नियमों का विवरण दिया जाएगा जिनका
सीधा सम्बन्ध शिशु के साथ है।

१. बच्चे को अलग सुलाना

आजकल बच्चे को अलग सुलाने पर बहुत जोर दिया जाता
है। यह बात बहुत कुछ ठीक है। परन्तु बच्चे को अलग
सुलाते समय यह नहीं भूलना चाहिए कि बच्चा मां के पेट में
जिस पानी मे रहता है उसका तापमान ९९ से कम नहीं होता।
यह पानी उसे बाह्य ताप की ऋतु सम्बन्धी तब्दीलियों से भी
सुरक्षित रखता है और उसके लिए नरम और गर्म बिस्तर का
काम देता है। पेट से बाहर आकर भी बच्चे को गर्मी की
आवश्यकता रहती है। अतः यह आवश्यक है कि उसे अलग
सुलाने से पहले यह निश्चय कर लिया जाए कि उसका बिस्तर
नरम, गर्म और आराम देने वाला हो। सर्दी के दिन हों तो
बच्चे को अलग सुलाने के लिए और भी सावधानी की आवश्य-
कता है। केवल यह देख कर सन्तुष्ट नहीं हो जाना चाहिए कि
उसके बिस्तर के कपड़े गर्म हैं। यह बात ध्यान मे रखनी चाहिए
कि कपड़े चाहे गर्म ही हों, बिस्तर शरीर की गर्मी से ही गर्म
होता है। अर्थात् वह हमे इसलिए गर्म प्रतीत होता है कि वह
हमारे शरीर की गर्मी को आस पास के वायु मण्डल में जाने
से रोकता है। यदि बिस्तर में कोई ऐसी वस्तु रख दी जाए
जो स्वयं गर्म न हो जैसे लकड़ी या पुस्तक तो बिस्तर उसे गम
नहीं करेगा।

जन्म के समय बच्चे का तोल अधिक से अधिक साढ़े सात
पौंड हो सकता है। इतने छोटे से शरीर में इतनी गर्मी कैसे,

सम्भव हो सकती है कि कड़ी सर्दी में भी अपने आपको गर्म रख सके। बिस्तर शरीर की इतनी गर्मी ले लेगा कि बच्चा पड़ा ठिठुरेगा। सम्भव है वह सर्दी खाकर बीमार हो जाए। इसलिए यह बात आवश्यक नहीं समझनी चाहिए कि एक तो बच्चे का कमरा काफी गर्म होना चाहिए। दूसरे अलग सुलाने से पहले उसके बिस्तर मे गर्म पानी की बोतल रख देनी चाहिए। यदि इतनी बाते न हो सके तो बच्चे को अलग सुलाना खतरे से खाली नहीं। इससे अच्छा है कि वह मां की छाती से लग कर सोए।

यदि बच्चा गर्मियों में पैदा हो तो ऊपर की बातों का ध्यान रखे बिना ही उसे अलग सुलाया जा सकता है। आनेवाली सर्दियों तक उसका शरीर इतना पल चुका होगा कि उसके अलग सुलाने में कोई खतरा नहीं रहेगा। इसमें कोई सन्देह नहीं कि अलग सोने वाले बच्चे मां के साथ सोने वाले बच्चों से अधिक स्वस्थ होते है। उन्हे पूरा आराम और गहरी नींद मिलती है। वह बहुत शीघ्र स्वावलम्बी हो जाते हैं। स्वावलम्बन जीवन की एक बहुत बड़ी आवश्यकता है।

२. बच्चे की प्राकृतिक खुराक

निरन्तर वैज्ञानिक अनुसन्धान द्वारा यह बात सिद्ध हो चुकी है कि बच्चे के लिए सर्वोत्तम खाद्य अपनी मा का दूध है। कोई बनावटी या पेटेंट खाद्य या किसी पशु का दूध इसका मुकाबला नहीं कर सकता। मां का दूध कीटाणुओं से मुक्त होता है। वह बच्चे को रोगों का मुकाबला करने की शक्ति प्रदान करता है। दूसरा दूध पीने वाले बच्चे मां का दूध पीने वालों से अधिक बीमार होते हैं। उनमे मरने वालों की संख्या भी अधिक है। मां का दूध पूर्णतः मधुर, स्वच्छ और स्वादिष्ट होता है। उसकी गर्मी

बच्चे के लिए उचित होती है। बनावटी दूध तैयार करने में परिश्रम करना पड़ता है और समय नष्ट होता है। मां का दूध इन कठिनाइयों से बचाता है। मां का दूध पीने से बच्चे के जबड़े दृढ़ होते हैं। उसके मुंह को पर्याप्त व्यायाम करना पड़ता है। इससे मुख की ओर रक्त का आना जाना बढ़ जाता है और बच्चे के स्वास्थ्य और सौंदर्य मे वृद्धि होती है। उसे दांत निकालने में सहूलियत होती है। बोतल का दूध पीने वालों को यह लाभ नहीं मिलते।

३. दूध पिलाने वाली मां के लिए हिदायतें

(क) मासिक धर्म के दिनों में बच्चे को दूध न पिलाया जाए। मासिक धर्म के पानी द्वारा हड्डियां बनाने वाले पदार्थ नष्ट हो जाते हैं। दूध कुछ घटिया हो जाता है। इन दिनों में गाय के दूध में दुगुना पानी मिलाकर पिलाते रहना चाहिए। अपना दूध अंगुलियों से निकालकर फेंक देना चाहिए।

(ख) गर्भाधान दूध पीने वाले बच्चे के लिए अच्छा नहीं। दूध पिलाने से पेट के बच्चे का भी पोषण ठीक नहीं होता। इस लिए जैसे ही गर्भ ठहरे, बच्चे का दूध तुरन्त छुड़ा दिया जाए। इसके पश्चात उसे गाय का दूध देना चाहिए।

(ग) यदि मां चिन्तित रहती हो या बीमार हो तो दूध में कुछ ऐसे दोष पैदा हो जाते हैं जो बच्चे के स्वास्थ के लिए हानिकारक होते है। ऐसी अवस्था में भी बच्चे को मां के दूध से हटा कर गाय के दूध पर लगा देना चाहिए।

(च) दूध पिलाने से पहले छातियों को जरा गर्म पानी से धो कर स्वच्छ रुई से सुखा लेना चाहिए ताकि छाती का मैल और पसीना दूध के साथ बच्चे के मुख मे न जा सके। बच्चे के मुंह

मे थन देने से पूर्व अंगुलियों से तीन चार बूंदें निकाल देनी चाहिएं।

(ङ) बच्चे को लिटा कर दूध न पिलाया जाए। इससे प्रायः बच्चों के कान बहने लगते हैं। सदा गोद में लेकर दूध पिलाना चाहिए और बच्चे और मां दोनों को सन्तुष्ट अवस्था में होना चाहिए।

(च) पहले तीन मास तक बच्चे को दिन के समय दो-दो घण्टे के बाद दूध पिलाना चाहिए। परन्तु शाम को अन्तिम बार ३ घण्टे के बाद। रात के दस बजे से लेकर प्रातः तीन बजे तक दूध पिलाने की कोई आवश्यकता नहीं। चौथे और पांचवे महीने दिन को ढाई-ढाई घण्टे के पश्चात और रात के समय छः घण्टे के बाद। छठे महीने से बीच का समय ३ घण्टे कर दिया जाए। रात को अन्तिम बार दूध ७ घण्टे के पश्चात पिलाया जाए। दसवे महीने से दूध पिलाने के बीच दिन को चार घण्टे और रात को आठ घण्टे का समय रखा जाए।

(छ) जब तक एक छाती पूर्णतः खाली न हो जाए, बच्चे को दूसरी छाती से दूध नहीं पिलाना चाहिए।

(ज) बच्चे को दूध पीते-पीते सोने नहीं देना चाहिए। उसे लगभग १५ मिनट तक बराबर दूध पीना चाहिए अन्यथा भूखा रहेगा।

उपरोक्त सभी बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। परन्तु सब से अधिक महत्त्व इस बात का है कि बच्चे को शुरू से ही समय के अनुसार दूध पीने की आदत डाली जाए। हमारे घरों मे समय का प्रायः कोई ध्यान नहीं रखा जाता। इसका फल यह होता है कि बच्चा समय-असमय मां को दूध के लिए तंग करता है।

निश्चित समय पर दूध पीने वाले बच्चे का स्वास्थ अच्छा रहेगा। उसकी मां का स्वास्थ भी अच्छा रहेगा। दूध अधिक

स्वास्थप्रद पैदा होगा। निश्चित समय के पश्चात दूध पीने वाले बच्चों की पाचन शक्ति अच्छी हो जाएगी क्योंकि उसके पेट को अधिक विश्राम मिलेगा।

शुरू में समय बांधने के लिए यदि कोई कठिनाई भी सहन करनी पड़े तो कर ली जाए। चन्द दिनों का यह कष्ट बहुत से आने वाले दुखों से सुरक्षित रखेगा। अच्छी आदतें डालना इतना कठिन नहीं जितना बुरी आदतें छुड़ाना।

ऊपर का दूध

यदि मां का स्वास्थ अच्छा न हो और उसका दूध स्वास्थ के लिए अच्छा न हो तो डाक्टर के परामर्श से बच्चे को ऊपर के दूध पर लगा देना चाहिए। उसे गाय या बकरी का दूध पिलाया जा सकता है। इस बारे में निम्न लिखित बातों का ध्यान रखा जाए।

(क) दूध स्वच्छ हो। बाजार से खरीदे दूध की बजाए बकरी या गाय के थनों से सीधा दुहा हुआ दूध अच्छा है।

(ख) उसे तेज़ आग पर पाच मिनट के अन्दर-अन्दर गर्म कर लिया जाए। इस दौरान में उसे एक साफ चमचे से हिलाते रहना चाहिए ताकि मलाई ऊपर न आ जाए।

(ग) गर्म दूध के बर्तन को ठण्डे पानी में रख कर ठण्डा करते समय भी हिलाते रहना चाहिए ताकि मलाई न जम जाए।

(घ) दूध का बर्तन स्वच्छ स्थान पर रखा जाए। उसे मलमल के कपड़े स ढका रहना चाहिए ताकि धूल और मक्खियों से बचा रहे।

(ङ) उतना ही दूध तैय्यार किया जाए जो पांच सात घण्टे के लिए पर्याप्त हो। उसके पश्चात फिर ताज़ा दूध लेकर तैयार किया जाए।

(च) गाय का दूध प्रकृति-बछड़े के लिए तैय्यार करती हैं और बछड़ा मनुष्य के बालक से बड़ा होता है। उसकी पाचन शक्ति भी अधिक होती है। इसलिए गाय का दूध असली हालत में बच्चे के अनुकूल नही हो सकता। उसे बच्चे की पाचन शक्ति के अनुकूल बनाने के लिए आवश्यक है कि उबाल कर ठण्डा किए हुए दूध मे उबालकर ठण्डा किया हुआ उतना ही पानी मिला ले। इससे इसका भारी पन दूर हो जाएगा और वह उतना ही हल्का और शीघ्र-पच हो जाएगा जितना मां का दूध। इसके अतिरिक्त उसमे चमचा भर खांड भी मिला लेनी चाहिए ताकि वह मीठा भी उतना ही हो जाए जितना मा का दूध। इस दूध मे वह आवश्यक जीवांश नहीं मिलते जो मां के दूध में होते है। इस लिए बच्चे को दिन भर में दो चार चमचे संगतरे, टमाटर या अंगूर का रस अवश्य पिलाना चाहिए।

अगर गाय या बकरी का दूध न मिल सके तो डाक्टर से पूछ कर कोई पेटैण्ट दूध जो खुश्क करके डब्बों मे बन्द किया हो पिलाना चाहिए। ऐसा दूध बाजार मे मिल सकता है।

बोतल की रक्षा और प्रयोग :—

ऊपर के दूध के साथ बोतल, उसकी रक्षा और प्रयोग के बारे मे भी कुछ आवश्यक बाते जानना आवश्यक है। जहां तक बोतल की बात है नाव जैसी (Boat Shaped) बोतल सर्वोत्तम और उपयोगी होगी क्योंकि उसे आसानी से साफ किया जा सकता है। अन्य बोतलों में यह दोष है कि उन्हे आसानी से साफ नही किया जा सकता।

चुसनी का सूराख इतना ही बड़ा होना चाहिए कि जब बोतल को उलटाया जाए तो एकाध बूंद ही उसमें से नीचे गिरे। सूराख बड़ा होगा तो उसमें से दूध की धारा मोटी गिरेगी। बच्चे को

दूध पीते समय कष्ट होगा। बड़े सूराख की चुसनियों से दूध पीते समय प्रायः बच्चों को अच्छू हो जाता है।

अगर बच्चा बोतल में कुछ दूध छोड़ दे तो उसे फेंक देना चाहिए। उसे बचा रखने और दूसरे समय पिलाने की भूल नहीं करनी चाहिए। रबड़ दूध के अंदर दुर्गन्ध और विष पैदा कर देता है।

दूध पिला देने के पश्चात् बोतल तुरंत गर्म पानी और ब्रुश से साफ कर दी जाए। पानी में यदि कुछ नमक मिला लिया जाए तो बोतल अच्छी तरह साफ हो सकेगी। चुसनियों को भी बड़े परिश्रम के साथ गर्म पानी और साबुन से धोना चाहिए। जब बोतल साफ हो जाए तो उसे उबले हुए ठण्डे पानी में रख देना चाहिए। यह बात याद रखनी चहिए कि अगर चुसनी अच्छी तरह साफ न होगी तो वह दूध को खट्टा कर देगी। बच्चे के शरीर मे विष फैल जाएगा और उसे अनेक रोगों का शिकार बना देगा। शिशु पालन के विशेषज्ञों का विश्वास है कि बोतलों द्वारा दूध पीने वाले बच्चों मे मरने वालों की संख्या अधिक होने का मुख्य कारण यह है कि या तो उनके दूध की स्वच्छता और पवित्रता का ध्यान नहीं रखा जाता या उन्हे गंदी चुसनियों से दूध पिलाया जाता है।

बोतल से दूध पिलाने का ठीक ढग यह है कि स्वच्छ बोतल में इतना दूध डाल लिया जाए जितना बच्चे को आवश्यकता हो। उसके पश्चात् बोतल को गर्म पानी मे रख दिया जाए ताकि बोतल के अंदर का दूध गर्म हो जाए। बोतल को पानी से निकालकर उसे अच्छी प्रकार हिला जुला लिया जाए। अपने गाल के साथ लगा कर तसल्ली कर ली जाए कि वह न तो बहुत गर्म लगे और न ठण्डी हो । सर्दी के दिन हों तो उसे मोटे कपड़े में लपेट लिया जाए ताकि बच्चे के पीते पीते दूध ठण्डा न हो जाए। बच्चे को गोदी मे

वैसे ही विठाया जाए जैसे मां अपना दूध पिलाते समय विठाती है। उसकी स्थिति उसके लिए सुविधा जनक होनी चाहिए। हर पांच मिनट के वाद एक मिनट के लिए बोतल उसके मुंह से निकाल ली जाए ताकि उसके पेट का दूध भली भांति ठिकाने लगता जाये। उसे अधिक से अधिक १५ मिनट के अन्दर अन्दर बोतल समाप्त कर लेनी चाहिए।

दूध के अतिरिक्त खूराकः—पहले तीन मास वच्चे को दूध के अतिरिक्त कोई ऊपरी खुराक न दी जाए क्यों कि वह दूध के अतिरिक्त अन्य कुछ भी नहीं पचा सकेगा। जैसा कि ऊपर लिखा जा चुका है वोतल का दूध पीने वाले वच्चे केवल फलों का रस पी सकते है। तीन महीने के वाद ऊपरी खुराक धीरे धीरे शुरू करा देनी चाहिए। प्रातः आधे उबले अण्डे की जरदी का एक चमचा भर देना चाहिए और दोपहर को १२ और २ वजे के बीच संगतरे और अंगूर का रस पिलाना चाहिए। यह दो चमचे से अधिक नहीं होना चाहिए। अगर कड़ी सर्दी हो तो रस को हल्की सी आंच पर रखके गर्म कर लिया जाए। संगतरे का रस अगर खट्टा हो तो उस मे थोड़ी सी खांड या ग्लूकोज मिला लिया जाए।

तीन महीने से लेकर नौ महीने तक ऐसे ही चलना चाहिए। नौ महीने के पश्चात् एक समय दूध के वदले सूजी, चावल या दलिया दूध में तैय्यार करके खिलाया जा सकता है। प्रारम्भ में यह खाने ठोस न हों। यथा सम्भव पतले हों। इसके साथ मांस या सब्जियों की तरी भो दी जा सकती है। तरी मे थोड़ा सा नमक मिला लिया जाए। इस अवस्था मे प्रतिदिन केवल तीन पाव दूध पर्याप्त है। फलों के रस का भी निरंतर प्रयोग कराया जाए।

पानी भी वच्चे के खाद्य में शामिल है। यह खाद्य का महत्व-पूर्ण अंग है। वच्चे को आरम्भ से ही पानी पीने का आदी वनाना

चाहिए। शुरू शुरू में दिन भर में कई बार करके तीन चार छोटे चमचे पर्याप्त हैं। बच्चा जब भी सोकर उठे तो उसे एक चमचा पानी पिला दिया जाए। पानी उसके पेट को साफ रखेगा। उसके शरीर से गन्दगी निकालेगा और उसके पोषण के लिए उपयोगी सिद्ध होगा। हमारे घरों मे छोटे बच्चों को पानी नहीं पिलाया जाता। सम्भवत: यह समझा जाता है कि बच्चे को प्यास ही नहीं लगती। यह भूल है। बच्चा सदा भूख ही से नहीं रोता, प्यास से भी रोता है। दूध उसकी प्यास नहीं बुझा सकता, पानी ही बुझा सकता है। जब भी बच्चा रोने लगता है, माताएं प्राय: उसे दूध पिला देती है। इससे एक ओर तो बच्चा पानी की कमी के कारण ठीक बढ़ता नहीं दूसरे हर समय दूध पीते रहने से उसकी पाचन शक्ति बिगड़ जाती है।

दांत निकालने का समय:—बच्चा प्राय: छ: या सात मास की आयु मे दांत निकालने शुरू कर देता है। यह काल बच्चे के लिए बहुत कष्ट दायक समझा जाता है। इन दिनों में उसे कई रोग हो जाते है। उसे ताप रहने लगता है। सिर, हाथ और पांव विशेषतया गर्म रहते है। जुकाम की शिकायत भी हो जाती है। कुछ बच्चों की आखे दुखने लगती है। पेचिश हो जाती है। मरोड़ (convulsions) के दोरे भी कई बच्चों को बहुत दुखी करते है।

दांत निकालने के दिनों के लिए बच्चे को बहुत पहले से तैय्यार कर लेना चाहिए। यदि उसका स्वास्थ अच्छा है तो वह आसानी से दांत निकाल लेगा। यदि वह दुर्बल है तो बड़ी कठिनाई होगी। वह अधिक दुर्बल, चिड़चिड़ा और हठी हो जाएगा। उसका स्वभाव बिगड़ जाएगा। जिन बच्चों का रख रखाव पहले छ: महीने अच्छा न रहा हो वे इन दिनों में बहुत दुबले पतले हो जाते है।

जब बच्चा किसी चीज को हाथ में पकड़ने और मुंह में डालने के योग्य हो जाए तो उसे कभी कभी लकड़ी की चुसनी, गाजर, शलगम या सेब का टुकड़ा चबाने के लिए देना चाहिए। इनको चवाने से उसके जबड़े स्वस्थ रहेंगे और वह सुविधा पूर्वक दांत निकाल सकेगा। दांत निकलने के दिनों मे भी कुछ बातों का ध्यान रखना आवश्यक है। सब से बड़ी बात यह है कि बच्चे का पेट साफ रहे। उसे बड़ी पाबन्दी के साथ समय पर खाना दिया जाए। बच्चा दुर्बल या चिड़चिड़ा रहता हा तो किसी अच्छे डाक्टर से परामर्श लिया जाए। बाजार की पेटैण्ट दवाओं और भिन्न २ 'वाटरों' स यथा सम्भव दूर ही रहना चाहिए।

दूध छुड़ाना:—जब बच्चा सारे दांत निकाल ले तो उसका अर्थ यह है कि प्रकृति उसे मां के दूध की आवश्यकता से मुक्त कर देना चाहती है। उसका दूध छुड़ा देना चाहिए।

अगर दूध स्वाभाविक ढंग से और धीरे २ छुड़ाया जाए तो यह मां और बच्चे दोनों के लिए कष्ट का कारण नहीं होता। इसके लिए निम्नलिखित बातों पर अमल करना चाहिए।

(क) दूध कड़ी गर्मी के दिनों मे न छुड़ाया जाए।

(ख) बच्चा यदि बीमार हो तो उसको स्वस्थ होना चाहिए।

(ग) गली, मुहल्ले या शहर मे महामारी फैली हो तो भी दूध छुड़ाने की जल्दी नहीं करनी चाहिए।

(घ) दूध धीरे २ छुड़ाना चाहिए। एकाएक दूध छुड़ा देने से बच्चे को बड़ा कष्ट होता है। प्रारम्भ ऐसे होना चाहिए कि यदि बच्चा चौबीस घण्टों मे पांच बार मां का दूध पीता है तो उसे एक समय का दूध बोतल से पिलाने का यत्न किया जाए। कुछ दिनों के पश्चात् दो बार, फिर तीन बार। इस प्रकार छः या आठ सप्ताह के अन्दर मा का दूध बिलकुल छोड़ दो। ऐसा करने मे

बच्चे को ही नहीं, मां को भी बड़ी सहूलियत है। उस का दूध अपने आप ही धीरे २ कम होना शुरू हो जाता है और बच्चा भी ऊपर के दूध का स्वभावी होने में कष्ट अनुभव नहीं करता।

प्रायः देखा गया है कि माताएं इस सहल ढंग पर नहीं चलती। वे एकाएक दूध छुड़ा देती है। छातियों पर मिर्चे पीस पीस कर लगाती हैं और दिन रात बच्चे को रुलाती है। यह तरीका गलत है। बच्चा मां के दूध का आदी होता है। मां की छातियां उसे दूध भी देती हैं और खुशी भी। ऊपर के दूध में न तो वह स्वाद होता है और न हीं वह आनन्द। फलतः एकदम दूध छुड़ा देने से बच्चा हठी और क्रोधी बन जाता है। वह ऊपर का दूध पीने से इन्कार कर देता है। अगर उसे बलात् पिलाया जाए तो वह इस अनोखे व्यवहार के साथ पूरे जोर से बगावत करता है। इससे उसके स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है।

शरीर की सफाईः—बच्चे के शरीर की सफाई का प्रारम्भ से ही ध्यान रखना चाहिए। जिन बच्चों को बचपन में साफ सुथरा नहीं रखा जाता, नहाने और मुंह हाथ धोने की आदत नहीं डाली जाती वह बड़े होकर साफ सुथरी आदतें नहीं अपना सकते।

सर्दी के दिन हों तो बच्चे को गर्म पानी से नहलाना आवश्यक है। ठण्डा पानी उसके अनुकूल नहीं। नहलाने से आध घण्टा पहले यदि उसे सरसों के तेल की मालिश करके धूप में लिटा दिया जाए तो अच्छा है। मगर इस बारे में दो बातें विशेष ध्यान मे रखनी चाहिएं। एक यह कि उसका सिर धूप में न रहे छाया में रहे। दूसरे यह कि उसके शरीर को ठण्डी हवा के झोंके न लगें।

साबुन के प्रयोग के बारे में लोगों के दो मत हैं। कुछ कहते हैं

कि दूध पीते बच्चे की खाल के लिए साबुन हानिकारक है। दूसरों का विचार है कि साबुन के प्रयोग से कोई हरज नहीं । यह दूसरा मत ठीक प्रतीत होता है। बच्चे के लिए सब से अच्छा नीम का साबुन है। नन्हे बच्चों को प्राय. फोड़े फुनसियों का रोग हो जाता है। नीम का साबुन उनको सुरक्षित रखेगा । इसके अतिरिक्त यदि बच्चे को तेल की मालिश के बाद नहलाना हो तो साबुन का प्रयोग और भी आवश्यक हो जाएगा। इसके बिना तेल की चिकनाहट दूर नहीं होगी । बच्चे को नहलाते समय इस बात का विशेष ध्यान रखना चाहिए कि साबुन का झाग उस की आंखों में न पड़ने पाए। इससे आंखों को हानि होती है ।

बच्चे को देर तक पानी मे बिठाए रखना ठीक नहीं। अधिक से अधिक आठ दस मिनट मे नहला धुला कर साफ और नरम तौलिए से शरीर को सुखा देना चाहिए। नहलाने के पश्चात् बच्चे के गालों, बगलों और जांघों मे पोडर लगाना बहुत अच्छा है। प्रारम्भ मे शरीर के जोड़ बहुत नरम होते हैं, पौडर उनकी रक्षा करेगा। रूई की साफ और न म बत्ती से उसके कान भी साफ कर देने चाहिएं। आंखों मे सुरमा भी अवश्य लगाना चाहिए। केवल इस लिए नहा कि अच्छा सादा सुर्मा स्वय लाभदायक है वरन् इस लिए भी कि आंखों मे सुर्मे की सलाई फेरने से आंखों का व्यायाम हो जाता है।

दूध पीते बच्चों के दांतों को साफ करने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए। उसके दांत वैसे ही साफ रहते है।

शरीर के अतिरिक्त कपड़ों की सफाई का भी बहुत ध्यान रखना चाहिए। जब बच्चा घुटनों चलना शुरु कर दे तो दिन मे दो या तीन बार उसके कपड़े बदलना आवश्यक है। बच्चे के मुंह से प्रायः थूक निकलती रहती है। दूधादि पीते समय भी उसके

कपड़े खराब हो जाते हैं। कपड़े खराब होने से बचाने के लिए उसे बिब पहनाना चाहिए।

बच्चों के नाखून बड़ों से ज्यादा बढ़ते हैं। फर्श पर खेलने के कारण उन मे मैल भी भर जाता है। इस लिए उसके नाखूनों को जल्दी २ कटवाना आवश्यक है।

बच्चों का व्यायाम:—छः महीने से कम आयु के बच्चे का सर्वोत्तम व्यायाम 'रोना' है। उसे प्रतिदिन दस पन्द्रह मिनट खुल कर रोने देना चाहिए। इससे उसके फेफड़े, पेट और अंतड़ियां बलवान होंगी। परन्तु इसका अर्थ यह नहीं कि यदि बच्चा रोता नहीं तो उसे चुटकी मारकर रुलाया जाए। लेकिन यदि वह किसी अनुचित बात पर हठ करके रोता हो तो रोने देना चाहिए। उसे तुरन्त चुप कराने का प्रयत्न नहीं करना चाहिए।

जब बच्चा बैठना और रेंगना सीख ले तो उसके लिए खिलौनों का प्रबन्ध करना चाहिए। लकडी और रबड़ के हल्के खिलौने अधिक लाभदायक रहेंगे। लोहे के खिलौने किसी मूर्ख का आविष्कार है। बच्चों को उनकी नोकें और कोणें चुभ जाने का सदा भय रहता है। सिल्वे लाइड के खिलौने सजाने के लिए तो अच्छे है। खेलने के लिए नहीं। यह शीघ्र टूट जाते है।

खिलौने एक एक दो दो करके खरीदने चाहिएं ताकि बच्चे की रुचि बनी रहे। यदि एक ही वार बहुत से खिलौने ला दिए जाएं तो रुचि मिट जायगी और वह उकता जाएगा।

वर्ष डेढ़ वर्ष या इस से ऊपर की आयु के बच्चों को एक दूसरे से मिलकर खेलना चाहिए। लकड़ी, मिट्टी और रबड़ के निर्जीव खिलौने इस अवस्था में दिलचस्पी का कारण नहीं हो सकते। बच्चा जीवित खिलौने की आवश्यकता अनुभव करता है। वह उनके साथ खेलेगा, हंसेगा, नाचेगा कूदेगा। किसी को पीटेगा,

किसी से पिटेगा। माता पिता को यह सब कुछ हंसी खुशी सहन कर लेना चाहिए। उसके खेलने के दिन हैं, उसे जी भर कर खेलने दिया जाए। जिन लोगों ने बचपन के खेल नहीं खेले वह यौवन और वृद्धावस्था के खेल भी नहीं खेल सकेंगे। वह उत्साह, साहस और उल्लास से वंचित रहेंगे। उनका जीवन महान क्रियाओं से खाली रहेगा। वह निराश और उदास रहेंगे।

स्वास्थ और जीवन के अच्छे झुकाव बचपन में ही बनते हैं। इस के लिए माता पिता को अपने बच्चों के पालन पोषण के समय स्वास्थ के नियमों का भी ध्यान रखना पड़ेगा। और स्वास्थ का मुख्य नियम व्यायाम है। यदि बच्चा इस से वंचित रह गया तो यह कमी किसी प्रकार भी पूरी न हो सकेगी।

बाल विकास

वैज्ञानिक अनुसन्धान ने यह प्रमाणित कर दिया है कि बच्चे के मानसिक, नैतिक तथा शारीरिक शिक्षण के लिए वास्तविक स्थान स्कूल और कालिज नहीं वरन् मां की गोद और घर का वातावरण है। माता पिता के नैतिक और शारीरिक रोगों का सीधा प्रभाव बच्चे के मानसिक और शारीरिक अंगों पर पड़ता है। क्षय, सिल, आतशिक आदि रोगों में ग्रस्त माता पिता के बच्चों को यह रोग पैत्रिक सम्पत्ति के रूप में मिलते है और स्वस्थ एवं सुन्दर लोगों के बच्चे स्वस्थ और सुन्दर होते है। जिस प्रकार अच्छी भूमि में अच्छा बीज अच्छी फसल पैदा करता है वैसे ही अच्छे गृहस्थों की सन्तान भी उत्तम पैदा होती है।

मनोविज्ञान शास्त्रियों ने यह भी स्पष्ट कर दिया है कि बच्चे का भला या बुरा भाग्य प्रथम छः वर्षों में निश्चित हो जाता है। यह भाग्य कोई गुप्त स्वर्गिक शक्ति नहीं बनाती वरन् माता पिता ही निर्माण करते हैं।

सन्तान का सौभाग्य सब की महत्वाकांक्षा है। कोई माता पिता ऐसे नहीं होंगे जो यह स्वीकार करें कि वे अपने बच्चों के साथ शत्रुता कर रहे है यद्यपि वास्तव में वे ऐसा करते हैं। उनके बच्चे के साथ जब भी कोई छोटा या बड़ा अन्याय करता है तो वे बदला लेने पर उतारू हो जाते है। परन्तु वे स्वयं बड़े से बड़ा अन्याय कर लेते हैं जो बच्चे के व्यक्तित्व के लिए घातक होता है और व्यक्तित्व घात जीवन घात से भी भयङ्कर अपराध है। व्यक्तित्व के रक्त के छींट आस पास के समस्त समाज के आंचल पर पड़ते

हैं। सारे समाज की नैतिकता पर धब्बे लग जाते हैं और जीवन नीरस, निराश और असंतुष्ट होकर रह जाता है।

आजकल प्रायः माता पिता की यह शिकायत होती है कि वे अपनी सन्तान से सन्तुष्ट नहीं। उनके बच्चे झूठ बोलते है, उनकी आज्ञा का पालन नहीं करते, बड़ों का आदर नहीं करते और शिक्षा मे दिलचस्पी नहीं लेते। उनकी सन्तान उनके लिए एक पहेली बनी रहती है। वह सुधार का जो भी उपाय करते हैं उसका फल उलटा निकलता है। दूसरी ओर बच्चों की शिकायतें भी कम नहीं। अत आवश्यक है कि माता पिता और सन्तान की इस खेंचतान पर ठंडे दिल से विचार किया जाए और वह नियम ढूंढने का प्रयत्न किया जाए जिनके अनुसरण से यह कठिनाइयॉं दूर हो सके।

प्रथम आवश्यकता:—प्रथम आधार-भूत आवश्यकता यह है कि बच्चा चाहे एक महीने का ही क्यों न हो उसे मांस का एक अज्ञान लोथड़ा न समझा जाए। यह समझ लेना चाहिए कि घर के वातावरण की एक एक हरकत उसके मन में समा रही है। माता पिता के रोष, प्रसन्ना, रोक, मनाही और लाड प्यार का पूरा प्रभाव पड़ता है। लिङ्ग विज्ञान के शास्त्रज्ञों का कहना है कि प्रायः माता पिता यह समझते है कि उनके बच्चे अज्ञान है और इस आधार पर वे अपनी लिङ्ग वासनाओं की पूर्ति के मामले मे उनका उचित आदर नहीं करते। वे समझते हैं कि बच्चा उनकी हरकतों को समझ ही नहीं सकता। वस्तु स्थिति यह है कि छः महीने का बच्चा भी उन से अप्रभावित नहीं रह सकता। इसका परिणाम यह है कि जितने भी नवयुवक किशोरावस्था या बाल्यावस्था मे लिङ्ग सम्बन्धी अनैतिकता का शिकार होते है वह प्रायः सभी अपने माता पिता की भूलों से प्रभावित होते है या अपने

उन साथियों से प्रभाव लेते हैं जिनको माता पिता की ओर से ऐसी उकसाहट मिली हो।

अतः सर्व प्रथम आवश्यकना इस बात की है कि माता पिता को अपने बच्चों के सामने बहुन सी ऐसी हरकतें यह समझकर नहीं करनी चाहिए कि उनके बच्चों को सूझ बूझ नहीं। निस्सन्देह उन में हमारे समान ज्ञानयुक्त सूझ नहीं होती तो भी उनके अंदर हमारी प्रत्येक हरकत का प्रभाव प्राप्त करने की शक्ति होती है। कोई झूठ, कोई झूठी तसल्ली, कोई रोष और घुड़की या कोई दुर्व्यवहार ऐसा नहीं जो बच्चे के नन्हे मस्तिष्क पर एक अमिट छाप न छोड़ दे। इस लिए बच्चों के ही लिए नहीं, हमारे अपने लिए भी यह अच्छा है कि अपनी सन्तान के सामने यथा सम्भव स्वभाव और आचार का सर्वोत्तम नमूना प्रस्तुत करें।

बच्चे के व्यक्तित्व का आदर :—बहुत ही कम लोग हैं जो अपने बच्चों के व्यक्तित्व का आदर करते है। अच्छे २ शिक्षित लोग भी इस गुण से वंचित होते है। वह लगभग प्रतिदिन ही उनका अपमान करते हैं, उन्हें गालियां देते है, डांटते डपटते और झिड़कते रहते है। बात बात पर उन्हें टोकते है, उनकी हरकतों में दोष निकालते हैं और उन्हे निकम्मा, मूर्ख और कामचोर आदि कह कर पुकारते हैं। इस दोषारोपण का बच्चे के व्यक्तित्व पर बहुत बुरा प्रभाव पड़ता है। जर्मनी के एक मनो-विज्ञान शास्त्री ने लिखा है कि इस प्रकार के व्यवहार से कई बार बच्चे के मन में माता पिता के विरुद्ध ऐसी गहरी घृणा उत्पन्न हो जाती है कि जीवन भर नहीं भूलती। वास्तव में हम अपने बच्चों का अपमान करके अपने भावी अपमान का बीज बोते हैं। कई मूर्ख माता पिता अपने छोटे बच्चों का ही नहीं, युवकों का

भी अपमान करते देखे गए है । इसका प्रभाव बहुत दीर्घ होता है ।

एक बार मैंने एक नवयुवक को देखा जो एक प्राईवेट फर्म मे बहुत थोड़े वेतन पर नौकर था। जब हम में कुछ घनिष्ठता हो गई तो एक दिन बातों ही बातों में उसने मुझे बताया कि उनके पिता पंजाब के एक बड़े शहर मे एक अच्छे व्यापरी है। मैंने पूछा, "आप उस व्यापार मे क्यों शामिल नहीं हुए ? क्या आपके स्वभाव के अनुकूल नहीं ?" उसने उत्तर दिया; "व्यापार से अच्छी चीज और क्या हो सकती है ? बात केवल इतनी है कि मेरे पिता पुराने ढंग के व्यक्ति हैं। वह हम नवयुवकों के प्राकृतिक झुकाव से अभिज्ञ है। मेरे मित्रों मे कुछ गरीब थे। वह जब कभी मेरे पास आकर बैठते तो मेरे पिता उनके साथ ऐसा व्यवहार करते जो मेरे लिए और उनके लिये बड़ा अपमान पूर्ण होता था। मेरा स्वाभिमान यह सहन न कर सका कि प्रति दिन मेरा और मेरे मित्रों का अपमान होता रहे। अब मैंने अपनी इच्छा के विरुद्ध ही नौकरी करली। मेरे मित्र जब कभी मेरे पास आते हैं तो मैं उनके आदर सत्कार का आनन्द प्राप्त कर सकता हूँ। स्वयं भी कभी २ जाकर उनसे मिल आता हूँ। मैंने अपने माता पिता से एक बात सीखी है कि अपने बच्चों और उनके मित्रों से सदा सद्व्यवहार करूंगा।"

यह एक ही उदाहरण नहीं। ऐसे नवयुकों की कमी नहीं जो अपने माता पिता से केवल इस कारण दुखी हैं कि उन्हे उचित सम्मान नहीं मिलता। अनेक ऐसे नवयुक हैं जिन्होंने जीवन क्रीड़ा मे इसलिए हार खाई कि उनके माता पिता के अपमान पूर्ण व्यवहार ने उनके स्वाभिमान को घायल कर डाला था। वह प्रति-दिन की आलोचना से ऐसे हतोत्साह हुए कि जीवन के प्रत्येक क्षेत्र मे पराजित हुए। उनके साहस और उत्साह को ऐसा धक्का

लगा कि उनमें कोई बड़ा काम करने का साहस पैदा ही न हो सका। उनका समस्त जीवन हीन भावना का शिकार होकर रह गया।

भय और दिलचस्पी:—बच्चों के सुधार के लिए प्रायः दो उपाय किए जाते हैं, नकारात्मक और रचनात्मक। नकारात्मक ढंग वह है जिस मे बच्चे को भय, धमकी और मार-पीट द्वारा अप्रिय क्रियाओं से रोक कर अच्छी क्रियाओं के लिए बाध्य किया जाता है। रचनात्मक ढंग वह है जिसमें मनाही से कोई काम न लिया जाए। न डराया जाए और न दण्ड दिया जाए। केवल उसको अच्छे और प्रिय कामों की ओर आकृष्ट किया जाए। बच्चा यदि कोई अच्छा काम करे तो प्रशंसा करके उसको उत्साहित किया जाए। जिन लोगों को बाल विकास का विस्तृत अनुभव है, उनका कहना है कि भय की बजाए आकर्षण और प्रशंसा से काम लेना चाहिए। यह अधिक प्रभावकारी और सफल ढंग है। इसी से बच्चों के व्यक्तित्व का निर्माण हो सकता है।

बच्चे के दोष कभी उसके मुख पर न कहिए। यदि वह मंदबुद्धि है, पाठ याद नहीं करता, समय पर स्कूल नहीं जाता, झूठ बोलता है या घर से पैसे चुरा कर ले जाता है तो उसे यह त्रुटियां और दोष स्मरण करा कर लज्जित करने की आवश्यकता नहीं। यह प्रणाली कभी लाभदायक नहीं होगी। मार-पीट करने या लज्जित करने से बच्चे के मन में सुधार का विचार तो क्या पैदा होना है उलटा विद्रोह उत्पन्न होता है। जिस बच्चे में कोई दोष पाया जाता हो, उसे अन्य बच्चों से अधिक सहानुभूति और स्नेह की आवश्यकता है ताकि वह वातावरण को अपने अनुकूल समझे। याद रखना चाहिए कि सहानुभूति और प्रोत्साहन निकम्मे से निकम्मे बच्चे में भी परिवर्तन ला सकते हैं। बच्चे को सदा भय

से बचाना चाहिए। उसे साहस और प्रोत्साहन दीजिए और प्रशसा द्वारा आशावादी बनाइये। इससे बच्चे के जीवन की धारा बदल जाएगी।

भय बच्चे के व्यक्तित्व के लिए घातक है। भय ही के कारण वह कई बार झूठ बोलने और बात छुपाने पर मजबूर हो जाता है। यहीं आकर वह माता-पित से दूर हो जाता है। भय दण्ड की सम्भावना से ही पैदा नहीं होता, और भी कई कारण है जिनसे यह बच्चों के मन पर छाया रहता है। कई मूर्ख माताएं अपने बच्चों को भयानक कहानियां सुना-सुना कर कायर बना देती हैं। अपनी आज्ञा का पालन करवाने के लिए उनके सामने भयानक बातों का जिक्र करती हैं। कई लोग अपने बच्चों को कुएं की मुंडेर या मकान की छत पर बिठा कर नीचे गिरा देने का भय देते है। कई लोग उन को हवा मे उछालते है। वह इसको मनोरंजन समझते है। परन्तु यह नहीं जानते कि कई बार बच्चे के कोमल हृदय पर भय का ऐसा चित्र बन जाता है कि जीवन पर्यन्त नही मिटता।

स्वभाव और विचार निर्माण:—बच्चे के स्वभाव और विचारों का निर्माण या उसका नैतिक सुधार बड़ी कठिन समस्या है। दुर्भाग्यवश कई माता-पिता इस नाजुक और महत्वपूर्ण कर्तव्य को निभाने के योग्य नहीं होते। कुछ लोग बच्चे पर कठोर निगरानी ही पर्याप्त समझते है। परन्तु अनुभव से सिद्ध हो गया है कि यह कार्य प्रणाली सर्वथा लाभकारी नहीं। कुछ लोग बच्चे को उसके भाग्य पर छोड़ देते है और समझते हैं कि स्कूल की शिक्षा से वह स्वयं ही सुधर जाएगा। यह भी एक मिथ्या भ्रम है। बच्चों का नैतिक विकास एक कठिन कला है। पाश्चमी देशों

में इस विषय पर अनेक पुस्तकें प्रकाशित हो रही हैं और इसे जीवन की एक बहुत बड़ी कला समझा जाता है।

जब तक बच्चे के मानसिक स्तर और उसके स्वाभाविक झुकाव को उसके वातावरण के प्रकाश में समझने का प्रयत्न न किया जाएगा, उसके भविष्य के निर्माण में कोई सहायता नहीं की जा सकती। जब भी बच्चा कोई असभ्य हरकत करे, तो हमारा कर्तव्य है कि रोग के इलाज से पूर्व उस की पहचान का प्रयत्न करें। इस संसार में कोई ऐसी बुराई नहीं जिसके पीछे कोई वास्तविक मजबूरी न हो। इस मजबूरी को समझना और दूर करना ही किसी अनैतिकता का असली इलाज है।

हम बड़ी भूल करते हैं जब हम बच्चे की प्रकृति को अपनी बुद्धि के मापदण्ड से मापते है। प्रत्यक्षतः बच्चा बच्चा ही होता है। हमने जीवन की कई बहारें देखी हैं, कई ठोकरें खाई हैं और कई अनुभव प्राप्त किए हैं। बच्चा शरारती और नटखट होगा, खेल कूद में रुचि रखेगा। उसको साथियों से लड़ने, उन्हें पीटने और स्वयं पिटने का शौक भी होगा। हठ करने और मचलने की वृत्ति भी कम न होगी। वह अपने कपड़ों का उतना ध्यान नहीं रख सकता जितना मैं और आप। यह सब उसकी अवस्था के कारण है। हमें इन बातों को सहन करने का स्वभावी बनना चाहिए। यदि आप इनको सहन नहीं कर सकते तो इसका अर्थ यह है कि आपको जीवन में रुचि नहीं रही और आप वृद्ध हो चुके हैं।

कईबार बच्चे से भूल हो जाती है परन्तु इसका कारण वह नहीं होता, हम होते हैं। अप्रत्यक्ष रूप से हम ही उस की भूल का कारण होते हैं। ऐसी अवस्था में बच्चे पर क्रुद्ध न हो कर स्वयं लज्जित होना चाहिए। बाल मनोविज्ञान के प्रसिद्ध यूरोपीय विशेषज्ञ डाक्टर नील ने अपनी पुस्तक The Problem Child में एक मनोरंजक घटना का वर्णन किया

है। वह लिखता है कि एक व्यक्ति अपने बच्चे को मेरे पास लाया और कहने लगा कि इसे चोरी करने का दुर्व्यसन लग गया है। आप इस का सुधार करें। मैं ने बच्चे के अध्ययन के लिए उसे अपने पास ठहरा लिया। मुझे मालूम हुआ कि बच्चे की आयु १२ वर्ष की थी। इस के बावजूद उसके पिता ने उसके लिए आधी टिकट खरीदी और रेलवे को जान बूझ कर धोखा दिया। यह लिखते हुए नील प्रश्न करता है कि जो बाप स्वयं अपने बच्चे के सामने झूट बोल कर पूरी की बजाए आधी टिकट खरीदता है और रेलवे को धोखा देकर हानि पहुंचाता है वह अपने बच्चे से यह गलत आशा क्यों करता है कि वह चोरी की आदत छोड दे।

हम यदि अपने दैनिक जीवन पर दृष्टि पात करें तो पता चलेगा कि हम स्वयं ही जान बूझ कर या अन जाने में अपने बच्चों को झूठ बोलने की शिक्षा देते है। उदाहरण के तौर पर जब कोई ऐसा व्यक्ति हमारे घर आए जिस हम मिलना नही चाहते तो हम किसी बच्चे के मुंह से कहलवा देते है कि 'घर नही है' यद्यपि हम उस समय घर ही पर होते है। या कभी कोई व्यक्ति कोई वस्तु मांगने आता है तो हम उसे कह देते हैं, "वह तो अमुक व्यक्ति मांग कर ले गया है" ऐसे अवसर पर हम यह नहीं सोचते कि घर मे जितने भी बच्चे है वे सब हमारे व्यवहार से झूठ बोलना सीख रहे मैं। मजे की बात यह है कि हम दूसरों से ही नहीं, स्वयं अपने बच्चों से भी झूठ बोलते है। झूठे वादे करते हैं और इस प्रकार उनके मन मे यह बात बिठा देते है कि सत्य का कोई महत्व ही नहीं।

इस लिए आवश्यक है कि बच्चों के नैतिक सुधार से पूर्व अपने आचार का निरीक्षण किया जाए।

वातावरण का ध्यानः—किसी भी व्यक्ति को अपने बच्चों

के आस पास के वातारण और उनके साथियों की ओर से उदासीनता नहीं रखनी चाहिए। बच्चे चाहे कितने भी अच्छे क्यों न हों। किसीके बच्चे यदि साफ सुथरे रहते हैं, आज्ञाकारी हैं, सच बोलते हैं, गाली गलौच से दूर रहते हैं, तो इसका अर्थ यह नहीं कि वह संतुष्ट हो जाए। यदि वातावरण दुराचारी है तो बच्चों को खतरे से बाहर नहीं समझना चाहिए। यह वैसा ही है जैसे किसी मुहल्ले में एक मकान बहुत ही साफ सुथरा हो। उसमें रहने वाले भी स्वास्थ सम्बन्धी नियमों का पालन करते हों परन्तु उस मकान की पक्की नाली के आगे और पीछे वाली कच्ची हो। उसमें कीचड़ भरा रहता हो मकान के आस पास के अन्य मकान गन्दे हों। उन में रहनेवाले भी गन्दे हों। तो उस साफ मकान के रहने वालों का स्वास्थ भी खतरे से खाली नहीं। आस पास की दुर्गन्ध उसके लिए भी उतनी ही हानि कारक होगी जितनी औरों के लिए। उन्हें मक्खियां और मच्छर भी सताएंगे। मलेरिया या कोई अन्य छूत की बीमारी उस मकान के साथ विशेष व्यवहार नहीं कर सकेगी। इसी प्रकार यदि मुहल्ले और स्कूल के अन्य बच्चों का आचार उत्तम नहीं तो उस का प्रभाव अच्छे बच्चों पर भी पड़ेगा।

ऐसी अवस्था में वातावरण पर कड़ी दृष्टि रखनी पड़ेगी। केवल अपने बच्चों का सुधार एक असफल स्वार्थ है। अपने बच्चों का ध्यान रखते हुए आप अपने पड़ोसियों के बच्चों के आचार की ओर से भी उदासीन न हों। हम लोगों की एक बड़ी कठिनाई यह है कि माता पिता अपने बच्चों के मित्रों से सीधा परिचय नहीं करते। जब कभी आप का बच्चा अपने मित्रों को घर लाए तो आप निजी तौर पर उन बच्चों में दिलचस्पी लें। यह परिचय आपको उनकी आदतों के अध्ययन का अवसर देगा। आप अपने बच्चों के नैतिक झुकाव का स्वयं ही अनुमान लगा सकेंगे। और अगर आप समझें कि किसी विशेष बच्चे के साथ आपके बच्चे

का मेल जोल अच्छा परिणाम पैदा नहीं करेगा तो आप उसे उससे दूर रहने का परामर्श दे सकेंगे। या उसको वता सकेंगे कि उसकी अमुक अमुक आदतें ग्रहण न करे। माता को बच्चों के अध्यापकों से भी अच्छे सम्बन्ध बनाने चाहिए। उनसे बच्चों के स्वभाव के अध्ययन में बड़ी सहायता मिल सकेगी। इस प्रकार जो त्रुटियां सामने आएंगी उनको दूर किया जा सकेगा और जो गुण दिखाई देंगी उनको प्रोत्साहित दिया जा सकेगा।

आज्ञापालन की शिक्षा:—माता पिता की यह स्वाभाविक इच्छा होती है कि उनके बच्चे आज्ञाकारी हों। प्रायः यह समझा जाता है कि बच्चों पर रोब दाब रखने से उनको आज्ञाकारी बनाया जा सकता है। परन्तु वस्तु स्थिति यह नहीं। भय और मजबूरी से आज्ञा मानना कोई आज्ञा पालन नहीं। आज्ञा पालन मन के साथ होना चाहिए।

यह नियम ध्यान में रखना चाहिए कि बच्चों को जितनी कम आज्ञाए दी जाएं उतने ही वह अधिक आज्ञाकारी होंगे। प्राय. घरों में देखा जाता है कि माता पिता "यह करो! वह न करो!" ही रटते रहते हैं, बच्चों को अनावश्क आज्ञाएं देते हैं और अनावश्यक मनाहियों द्वारा उनकी दिलचस्पियों में रोड़ा अटकाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बच्चों के मन में माता पिता के प्रति विरोधी भावना उत्पन्न हो जाती है। फिर जब भी उन्हें अवसर मिलता है, वे आज्ञा उलंघन से नहीं चूकते। बुद्धिमान माता पिता अपने बच्चों को आज्ञा देते ही नहीं, केवल परामर्श देते हैं। ऐसे ही आज्ञाएं देते रहने वाले माता पिता से बच्चों को इस लिए भी घृणा हो जाती है कि उनका मस्तिष्क उनकी आज्ञाओं का उद्देश्य नहीं समझ पाता। यह घृणा बचपन में अधिक जोर पकड़ती है। बच्चा मुंह में सिक्के या अन्य वस्तुएं डालता है, खिड़की से झुक

कर नीचे देखता है। मुर्गी या चूजे को पकड़ कर उसकी दुम खेंचता या गला घोटता है, दूसरे बच्चों की चीजे उठा लेता है, कड़ी धूप में घर से बाहर निकल जाता है, कमरे में इधर उधर अपने खिलौने बखेर देता है। मूर्ख माताएं इन बातों के लिए अपने बच्चों को कठोरता से डांटती है। बच्चा हैरान होता है कि उसने कौनसी भूल की है जिसके लिए उसे दण्ड मिल रहा है। वह सहम कर रह जाता है परन्तु कारण नहीं पूछ सकता। इस लिए माता पिता को चाहिए कि ऐसे अवसर पर बच्चे को समझा दें कि उसकी अमुक क्रिया से अमुक परिणाम निकल सकता है जो स्वयं उसके लिए कष्ट दायक होगा।

जो माता पिता बच्चों से अपनी इच्छाओं का आदर कराना चाहते है, उन्हे स्वयं भी उनकी इच्छाओं का आदर करना पड़ेगा। इस संसार मे आदर किए बिना प्राप्त नहीं किया जा सकता। माता पिता और संतान के परस्पर सम्मान का एक बहुत उत्तम उदाहरण मेरे देखने में आया है। एक वृद्ध ने मुझे बताया, मेरे पांच बेटे हैं। सब विवाहित हैं। हम सब एक ही मकान में रहते है। जहां तक मेरी स्मरणशक्ति काम करती है मेरे किसी बेटे या बहू ने मेरी आज्ञा का उल्लंघन नहीं किया।" मैं ने पूछा, "इसका कारण?" उसने उत्तर दिया, "मैं उनकी बातों मे कभी हस्तक्षेप नहीं करता। उनके आनन्द मे कभी विघ्न नहीं डालता। उनकी दिल-चस्पियों में बाधक नहीं होता। उनके खाने, पीने और पहनने की कभी आलोचना नहीं करता।"

संतान वयस्क हो या अवयस्क, यह सिद्धांत बहुत उपयोगी रहेगा कि कम से कम आज्ञा दो और कम से कम विघ्न डालो।

बच्चों का मानसिक तथा शारीरिक विकास :— वही माता पिता अपनी सन्तान पर गर्व करने का अधिकार रखते हैं जो

अपनी संतान के मानसिक और शारीकि स्वास्थ को अपने से अच्छा बना सके। हमे सदा यह प्रयत्न करना चाहिए कि जब हमारी सन्तान जीवन के क्षेत्र मे पदार्पण करे तो हम से अधिक योग्य, स्वस्थ, सूचित और शिष्ट हो। वह माता पिता अपने बच्चों पर बड़ा अत्याचार करते है जो उन्हे खेल कूद और व्यायाम की ओर नहीं लगाते। बचपन का स्वास्थ जीवन भर के स्वास्थ की आधार शिला है। जो लोग बाल्य काल मे व्यायाम न करते रहे हों, बड़े होकर अपने माता पिता की भूल का फल भुगतते है। अच्छा यौवन अच्छे बचपन ही का फल हो सकता है।

माता पिता को चाहिए कि बच्चों को बचपन से ही जीवन की कठिनाइयों का मुकावला करने के लिए तैय्यार करे। बच्चों का 'छुई मुई' समझ कर हर समय उनकी अनावश्यक सुरक्षा और सावधानी मे लगे रहना अच्छा नहीं। कई माता पिता अपने बच्चों को सड़क के पास नहीं फटकने देते। सीढ़ियों पर चढ़ने से भी रोकते है। उनको भय रहता है कि शायद कोई दुर्घटना हो जाए या चोट लग जाए। यह हर समय की चिन्ता और सावधानी बच्चों को कायर बना देती है। कभी आप के बच्चे को कोई चोट भी आ जाए तो कोई बात नहीं।

बाल या किशोर अवस्था में कोई हड्डी पसली भी टूट जाए तो अपने आप ठीक हो सकती है। जोखिम मे रहने से जोखिम से बचना आता है। जिन लोगों ने बचपन में कोई दुर्घटना नहीं देखी वह जीवन भर सहमे रहते है। कोई महान कार्य नहीं कर पाते।

शारीरिक विकास के साथ मानसिक उन्नति का भी ध्यान रखना आवश्यक है। छोटे बच्चे विचित्र प्रश्न करते हैं। अच्छे माता पिता यथा सम्भव उनके प्रत्येक प्रश्न का उत्तर देते हैं।

याद रखना चाहिए कि बच्चों के प्रश्नों का उत्तर देना सहल नहीं। कई बच्चे अपने नन्हे बहिन भाइयों के जन्म पर विचित्र प्रश्न करते है। जैसे 'वह कहां से आया है?' इसका उत्तर प्राय: यह होता है; "छत से" या "आकाश से"। ऐसे उत्तर से उसका क्या मानसिक विकास हो सकता है? बच्चों के साधारण ज्ञान की वृद्धि एक बहुत बड़ी रचनात्मक सेवा है।

वयस्क होने के पश्चात :—बचपन के पश्चात वयस्कावस्था की सीमा प्रारम्भ होती है। इस अवस्था का दायित्व माता-पिता के लिए कुछ कम चिन्ता जनक नहीं होता। यौवन भावुकता की बाढ़ है जिसकी तूफानी लहरों से बचने की शक्ति बहुत थोड़े नवयुवकों मे होती है। यौवन की घाटी मे भटके हुए बटाही किसी का नेतृत्व स्वीकार नहीं करते। पग-पग पर ठोकरें खाते हैं और समझते हैं कि ठोकरों मे ही जीवन का रस है। बुद्धिमान माता-पिता ऐसी अवस्था मे भी बदशों और रुकावटों से काम नहीं लेते। वह भली भाति समझते है कि नदी के आगे बांध बाधना बेकार है। वह केवल बहाव का दिशा बदल देते है। वह जानते है कि बाढ़ आने वाली है, इसलिए पहले से ही उसके लिए तैय्यार रहना चाहिए। वह अपनी संतान मे कठोर परिश्रम की रुचि उत्पन्न कर देते है और जिस नवयुवक को परिश्रम का चस्का लग गया वह मझधार से अवश्य ही बच निकलेगा। एक प्रसिद्ध उक्ति है कि बेकार व्यक्ति का मस्तिष्क शैतान का कारखाना है। यह उक्ति अनुभव की कसौटी पर पूरी उतर चुकी है। जिन लोगों को यौवन काल में बेकार रहने का अवसर मिले उनकी पाशविक भावनाएं उनको काम देती हैं। भावुकता की बाढ़ उनको फैशन परस्ती, बनाव सिंगार, प्रणय गीतों और कहानियों के अध्ययन और आवारा युवक-युवतियों के सम्पर्क की ओर धकेलती है।

इसके विपरीत जिन युवक-युवतीयों को दिन भर काम काज से खाली अवसर न मिले उन्हें आवारगी के विचार का भी अवकाश नही होता।

यौवन काल में व्यस्त रहने वाले लोग ही जीवन भर की जिम्मेदारियों का रस ले सकते है। उन्हे अच्छे स्वास्थ, उत्तम चरित्र और पवित्र विचारों का आनन्द मिलता है।

इसलिए माता-पिता का कर्तव्य है कि अपनी सन्तान की रचनात्मक शक्तियों का अनुमान कर के उनकी रुचि के अनुसार उनके जीवन का आदर्श निश्चित करे क्योंकि सोद्देश्य जीवन ही परिश्रम की प्रेरणा दे सकता है और कठिनाइयों को सहर्ष सहन करने का शौक दे सकता है।

स्मरण शक्ति

प्रकृति ने मनुष्य को जो शक्तियां प्रदान की हैं उनमें स्मृति एक महान और विस्मयपूर्ण शक्ति है। मानव मस्तिष्क एक ऐसा गोदाम है जिसमें वर्षानुवर्ष के अनुभव, घटनाएं, कहानियां, शब्द, दृश्य और नाम एकत्र होते रहते हैं। इसे एक ऐसे कैमरे के अनुरूप भी कहा जा सकता है जो विभिन्न ज्ञानेन्द्रियों की सहायता से जो कुछ देखता, सुनता और अनुभव करता है, उसके चित्र लेता रहता है। हम अपने जीवन की प्रत्येक बीती और देखी हुई घटना का चित्र स्मृति-पटल पर अंकित पाते हैं।

शरीर विज्ञान के ज्ञाता बताते है कि मानव मस्तिष्क में ५ अरब तहें होती हैं। इनमें से केवल ५ लाख काम आती हैं। शेष बेकार पड़ी रहती है। यह बात यदि सत्य हो तो स्पष्टतया मनुष्य इतनी विचार और स्मरण शक्ति का मालिक है जिसका अनुमान करना भी कठिन है। आज तक किसी भी व्यक्ति ने इन सब का प्रयोग नहीं किया। एडीसन जैसा प्रसिद्ध वैज्ञानिक भी अपने मस्तिष्क का तीन चौथाई ही काम में ला सका। वस्तु-स्थिति यह है कि मनुष्य अब तक अपनी मानसिक शक्ति से पूर्णतः परिचित नहीं हुआ।

यद्यपि प्रकृति ने मानव मस्तिष्क के निर्माण में बड़ी उदारता दिखाई है तो भी यह मानना पड़ेगा कि हम में से अनेक लोग मानसिक तौर पर अत्याधिक दुर्बल हैं। ६५ प्रतिशत से भी अधिक लोग विचार और आविष्कार के गुणों से वंचित हैं। इतनी ही संख्या उन लोगों की भी है जिनकी स्मृति बोदी और

अविश्वसनीय है। ऐसा व्यक्ति विरला ही दिखाई देगा जिसे अपनी स्मृति से शिकायत न हो। विस्मरण एक ऐसा सर्वव्यापी रोग मान लिया गया है कि इसके पर्दे में प्रत्येक व्यक्ति अपनी अपनी लापरवाही को क्षम्य बना सकता है। कई लोगों का घरेलू और व्यापारिक जीवन केवल इसी लिए नीरस है कि उनकी स्मरण शक्ति उनका साथ नहीं देती। वह हकीमों और डाक्टरों के पीछे मारे मारे फिरते हैं परन्तु कहीं आशा पूर्ण नहीं होती। उनके जीवन का कोई दिन ऐसा नहीं होता जिसमें उनको लज्जित न होना पड़ता हो।

परन्तु मनोविज्ञान शास्त्रियों ने हमे आश्वासन दिलाया है कि स्मृति कोई अजेय शक्ति नहीं। इस पर भी काबू पाया जा सकता है। इसका विकास इस ढग से किया जा सकता है कि वह हमारे लिए अधिकाधिक उपयोगी सिद्ध हो सके और हमारा पूरा पूरा साथ दे सके। भूलचूक और विस्मरण की सम्भावनाएं बहुत कुछ कम की जा सकती है। स्मृति की कमजोरियां दूर करके उसे विश्वसनीय बनाया जा सकता है। इस खोज से यह भी ज्ञात हुआ है कि मनुष्य अपनी इच्छा शक्ति से काम लेकर केवल उन्हीं चित्रों को अपने स्मृति पटल पर अंकित होने दे जिनको उपयोगी समझता हो। अन्य बातों से वह अपने मस्तिष्क को साफ रख सकता है।

अच्छी स्मरण शक्ति की पहली आधारभूत शर्त अच्छा स्वास्थ है। यह आवश्यक नहीं कि जिसका शरीर अच्छा होगा उसकी स्मृति भी अच्छी होगी। लेकिन अच्छी स्मृति के लिए अच्छा स्वास्थ अनिवार्य है। जो व्यक्ति चाहता है कि अपनी स्मृति को किसी अनुशासन में रखे उसे अपनी इच्छा शक्ति को दृढ़ करना होगा। और इच्छा शक्ति की दृढ़ता अच्छे स्वास्थ के विना लगभग असम्भव है। यदि मस्तिष्क की ओर स्वस्थ

रक्त का दौरा होगा तो निश्चय ही स्मृति पर अच्छा प्रभाव पड़ेगा। वृद्धावस्था में स्मृति की दुर्बलता का मुख्य कारण यह है कि शरीर में ताज़ा रक्त की वृद्धि कम होने के अतिरिक्त रक्त का स्राव भी धीमा हो जाता है। जो व्यक्ति भी अपनी स्मृति को अच्छा बनाना चाहता है उसे स्वास्थ के नियमों का सावधानी से पालन करना होगा। खाना चबा चबा कर खाए, दीर्घ श्वास ले, सैर की आदत रखे। और परिश्रम का स्वभाव बनाए, कब्ज़, ज़ुकाम और नींद की कमी से यथा सम्भव बचता रहे। सभी मादक वस्तुओं से विशेष कर मद्यपान से दूर रहे।

प्रत्येक व्यक्ति की स्मृति में एक न एक विशेषता होती है। जिस व्यक्ति को कविता से लगाव है, वह पद्य याद रख सकता है। अन्य कोई भी चीज़ उसकी स्मृति पर इतना गहरा प्रभाव नहीं छोड़ सकती। जिस चीज़ से मनुष्य का प्रेम और दिल-चस्पी अधिक होगी, वह उसकी स्मृति मे भली भांति सुरक्षित रहेगी। जिन चीज़ों मे उसकी रुचि नहीं होगी, उनको याद रखना उसके लिए कठिन होगा। जब मैं पढ़ता था तो मुझे हिंदी भाषा से बड़ा प्रेम था और अलजेब्रे से बड़ी घृणा। फलत. हिंदी की अनेक लोकोक्तियां, उनकी व्याख्या, कठिन शब्द और गम्भीर से गम्भीर पद्य अर्थ सहित बिना कठिनाई के याद हो जाते थे और अलजेब्रे का एक भी फार्मूला भारी लगता था।

कोई भी व्यक्ति सब चीज़ें याद नहीं कर सकता। इतिहास में जो लोग असाधारण स्मृति रखने के लिए प्रसिद्ध हैं वह भी सर्वत्र वैसे नहीं थे। यदि उन लोगों को कई कई सौ पृष्ठ की पुस्तकें याद होती थीं या किसी चीज को एक बार पढ़ कर तुरंत सुना सकते थे तो यह भी सम्भव है कि अन्य मामलों मे उनकी स्मृति उनका साथ न देती हो। वह चेहरे भूल जाते

होंगे। वादे भूल सकते है। रास्ते रंग और आवाजें भूल सकते हैं।

निस्संदेह हमारी स्मरण शक्ति सामूहिक तौर पर भी उत्तम होनी चाहिए परन्तु फिर भी अपनी स्मृति के विशेष क्षेत्र को प्राथमिकता देनी चाहिए। जिस कार्य या व्यापार में हम लगे हुए हों उसमे जो कर्तव्य हमारी स्मृति को दिया गया हो उसे वह ठीक प्रकार से निभा सके। एक क्लर्क को यह अवश्य ज्ञान होना चाहिए कि अमुक कागज़ अमुक अलमारी मे पड़ा है। दस्तावीज़ें कहां रखी है और रजिस्टर कहां? कल सायंकाल उसने कौन सा काम कहां छोड़ा था? आज कौन सा काम करना है और कौनसा बाद में। अपने दफ्तर के आवश्यक आंकड़े, हिसाब किताब, बिल, रुपये की वसूली और अदायगी की तिथियां—यह छोटे और बड़े काम हर समय उसके ध्यान मे रहने चाहिए। उसे स्मरण रहना चाहिए कि अमुक अमुक फर्मों और आसामियों के साथ दफ्तर का बंधा लगा मामला क्या है। उसे किस तिथि तक कौन सा काम तैय्यार रखना चाहिए। यदि वह अपने काम मे गलती नहीं करता, भूल चूक से बचा रहता है तो हम कहेंगे कि वह अपने काम के लिए उपयुक्त व्यक्ति है और उसकी स्मृति अपने काम मे विशेष पुष्ट है।

यदि किसी व्यक्ति ने ऐसा काम शुरू कर लिया है जो उसके स्वभाव के प्रतिकूल है तो उसने अपने व्यक्तित्व के साथ ही नहीं, अपनी स्मृति के साथ भी अन्याय किया है। वह प्रतिदिन भूलेगा, प्रतिदिन गलतियां करेगा और इन गलतियों की बार बार पुनरावृत्ति करेगा। यहां तक कि उसे विस्मरण रोग मे ग्रस्त होने का भ्रम हो जायगा यद्यपि वास्तव मे उसकी स्मरण शक्ति निर्बल नहीं। वह केवल गलत स्थान पर काम करने का जुर्माना दे रहा है। प्रत्येक नवयुवक का कर्तव्य है कि अपने स्वभाव का

भली भांति अध्ययन करे। वह कार्य प्रारम्भ करे जिसमें उसको मानसिक सन्तोष मिले। यदि परिस्थि ने उसे कोई अनुचित कार्य करने पर बाधित कर दिया है तो उसे यथासम्भव अभ्यास द्वारा अपनी स्मृति को उस कार्य के अनुकूल बदलना चाहिए।

स्मृति के अभ्यास और विकास से पूर्व यह जानना आवश्यक है कि स्मृति है क्या। इस प्रश्न का उत्तर बड़ा साधारण है। मनुष्य जो कुछ भी देखता, सुनता और अनुभव करता है, उसकी छाप उसके मस्तिष्क पर लग जाती है। इस छाप की पुनरावृत्ति करने वाली शक्ति का नाम ही स्मृति है। यदि देखते, सुनते और अनुभव करते समय मनुष्य का मस्तिष्क चौकस न हो या अन्य चीजों में व्यस्त हो, या बीमारी और असावधानी की अवस्था में हो तो यह छाप बहुत धीमी होगी और आवश्यकता के समय इसकी पुनरावृत्ति न हो सकेगी। अतः स्मृति सम्बन्धी प्रमुख नियम यह है कि जितना गहरा किसी चीज का प्रभाव होगा उतना ही उस को याद रखना आसान होगा और जितनी धीमी छाप होगी, उतना ही उसको भूलने की सम्भावना भी अधिक होगी। यह बात मन में बिठा लेनी चाहिए कि स्मृति के विकास और अनुशासन के लिए जहां इस बात की आवश्यकता है कि उपयोगी बातें याद रह जाएं, वहां यह भी अनिवार्य है कि अनावश्यक बात भूल जाए।

स्मृति के विकास के लिए यह पर्याप्त नहीं कि मस्तिष्क पर किसी चीज की गहरी छाप पड़ जाए। अनुभव ने यह बात सिद्ध कर दी है कि कई ऐसे प्रभाव भी मिट जाते है जिनके बारे में मनुष्य का विचार होता है कि जीवन भर याद रहेंगे। इस भय का का एक मात्र इलाज यह है कि जब कोई विशेष घटना स्मृति पटल पर आ जाए तो मस्तिष्क को चाहिए कि उसके विभिन्न पहलुओं पर विचार करके उसको दृढ़ करने में सहायक हो।

पुनरावृत्ति और वार्तालाप भी स्मृति के लिए अच्छी ज़मानत है। जो घटना लिख या बोल कर दुहराई जाए वह उस घटना के मुकाबले में अधिक समय तक याद रहेगी जिसे एक बार देखने या सुनने के बाद कभी बयान न किया गया हो।

परन्तु मस्तिष्क की मुख्य शक्ति दर्शन की है। बहुत कम लोग इस शक्ति के पूर्ण और ठीक प्रयोग से परिचित हैं। एक व्यक्ति के घर मे वर्षों तक एक गाय बंधी रहती है। गाय का एक सींग छोटा है और एक बड़ा। लेकिन वह नहीं बता सकता कि दाहना छोटा है या बायां। एक व्यक्ति वर्षों तक एक दफ्तर में काम करता है लेकिन यदि उस से पूछा जाए कि उसके कमरे में कितने रोशनदान हैं तो उसे उत्तर देने से पहले सोचना पड़ेगा। बड़ी देर की बात है। एक मित्र से मेरी नई नई जान पहचान हुई थी। वह पहली बार मुझे अपने घर ले गया। जहां हम प्रतिदिन मिला करते थे वहां से उसका मकान आध फरलांग से भी कम दूरी पर था। परन्तु कुछ ही दिनों के पश्चात् जब मुझे उसके घर पुन. जाने की आवश्यकता पड़ी तो मै रास्ता भूल गया। बहुत प्रयत्न करने पर भी उसका घर न ढूंढ सका।

बहुत से लोग इसे दिमाग़ की कमजोरी समझते हैं। ऐसा नहीं। यह वास्तव मे अध्ययन की कमजोरी है। जिन चीज़ों या घटनाओं से हमारी भेंट होती है, हम उनको आंखें खोल कर नहीं देखते। उन्हे समझने और अपनी स्मृति मे सुरक्षित रखने के लिए एकाग्रता से काम नहीं लेते। परिणाम यह होता है कि उसके चिन्ह हमारे मस्तिष्क पर इतने धीमे और धुंधले पड़ते हैं कि उन्हे पुन. उजागर करना कठिन हो जाता है। निस्संदेह गहरे प्रभावों के लिए गहरे अध्ययन की आवश्यकता है। और जब मैं दूसरी बार अपने मित्र के साथ उनके घर गया तो मैंने अपनी अध्ययन शक्ति को रास्ते के चिन्ह स्मरण रखने के लिए बाध्य

किया—"यह हलवाई की दूकान के साथ पहला मोड़ है, यह पानी का पम्प है, यह मस्जिद के साथ दूसरा मोड़ है और यह कुछ दूर चलकर सब्ज रंग की इमारत के ठीक सामने—बस, यही मकान है। मुझे याद रहना चाहिए।'

वही लोग अधिक भूलते हैं जिनकी अध्ययन शक्ति उनकी क्रिया का साथ नहीं देती। ६० प्रतिशत से भी अधिक लोग जब काम करते है तो ऐसा प्रतीत होता है कि उनका ध्यान उनके काम पर केन्द्रित है परन्तु होता इसके उलट है। उनके हाथ या कलम तो अवश्य ही कर्मव्यस्त होते है लेकिन उनका ध्यान, उनका विचार कहीं और घूम रहा होता है। ध्यान के बिना काम करने का यह स्वभाव धीरे धीरे उनके समस्त जीवन पर छा जाता है। उनकी दशा यह हो जाती है कि दियासलाई की डिबिया रखते हैं सिरहाने के नीचे और आवश्यकता पड़ने पर ढूंढते हैं रसोई में जाकर। क्यों? इस लिए कि दियासलाई को तकिए के नीचे रखते समय उनका ध्यान कमरे की खिड़की से बाहर आकाश पर छाई हुई घटा का आनन्द लूट रहा था या दीवर के साथ लटके हुए कैलेण्डर की लाल तिथियों मे खोया हुआ था।

एकाग्रता भी स्मृति का एक अंग है। कई विद्यार्थी बहुत कम परिश्रम करके भी रातों जागने वाले अपने साथियों से आगे बढ़ जाते हैं। इसका कारण यह है कि जब अध्यापक भाषण दे रहा होता है तो वह उसके एक एक शब्द को एकाग्रचित्त होकर सुनते हैं। जो बात समझ में नहीं आती, फिर से पूछ लेते हैं। इस प्रकार उन्हें सारा पाठ अच्छी प्रकार याद हो जाता है। इसके विपरीत जो विद्यार्थी बे ध्यान बैठकर भाषण सुनते हैं उन्हे कुछ भी' पल्ले नहीं पड़ता। वह मन्द बुद्धि कहे जाते हैं। उन्हें अपने एकाग्र न रहने का फल भुगतना पड़ता है।

एकाग्रता ही वह ताली है जिससे स्मृति की बंद खिड़कियां

खोली जा सकती हैं। अपने साथियों, अफसरों, मातहतों और ग्राहकों की हर बात ध्यान से सुनी जाए। घर, दफ्तर और व्यापार के सारे कार्य पूरे ध्यान से निभाये जायें। प्रत्येक वस्तु उठाते, रखते, लेते देते और खरीदते समय पूरी एकाग्रता से काम लिया जाए। ७५ प्रतिशत स्मृति एकाग्रता का दूसरा नाम है।

विचार शीलता भी स्मृति की सच्ची सहायक है। किसी काम पर सोच समझकर हाथ डालना, काम के दौरान में सोच विचार से काम लेना और काम समाप्त कर लेने के पश्चात् उस पर समालोचक दृष्टि डालना—यह आदतें स्मृति को ही बलवान् नहीं करेंगी योग्यता को भी बढ़ाएंगी। प्रति रात्रि सोने से पूर्व यदि कुछ क्षण दिन भर के कामों पर विचार करने पर लगाये जाएं तो स्मरण शक्ति सुदृढ़ हो सकती है। अपने आप से अपनी आवश्यकताओं के अनुसार प्रश्न करने चाहिए। जैसे, किस किस व्यक्ति से क्या क्या वादे किए? कौनसा काम कितना पूरा किया और कितना शेष है? इसी प्रकार प्रति दिन प्रातः उठकर दिन का कार्य क्रम मन में बना लेना चाहिए। जैसे, आज सुरेन्द्र और स्वरूप को पत्र लिखने हैं, अमुक मुक कागजात पूरे करने हैं, बाजार से लैम्प की चिमनी, ऊन और जुराबें खरीदनी हैं, पुस्तकालय की पुस्तक लौटानी है, दफ्तर से लौटते हुए कैलाश से मिलना है—इत्यादि। प्रतिदिन दोनों समय ऐसा करने से स्मृति पर बहुत अच्छा प्रभाव पड़ेगा।

अच्छी स्मृति पाने के लिए पुनरावृत्ति और वार्तालाप की आवश्यकता से इन्कार नहीं किया जा सकता। गणित के फार्मूले कविताएं, नुस्खे और नाटक के पार्ट बार बार रटने से ही याद होंगे। परन्तु किसी वस्तु को तोते की भांति रटना भी व्यर्थ है। उसके अर्थ की ओर भी ध्यान रखना चाहिए। मन ही मन रटने की बजाए ऊँचे स्वर में रटना अच्छा है। यह काम प्रातः

सायं सैर के दौरान या अध्ययन के कमरे में एकाग्रता के साथ करना चाहिए।

इसी प्रकार जिन घटनाओं को अपनी पत्नि या अपने पति या किसी मित्र से बात चीत के दौरान दोहराया जाएगा, वह स्मृति में अधिक सुरक्षित रहेंगे। कुछ देर पहले मुझे अपने आधे मिलने वालों के नाम याद नहीं रहते थे। अब कभी कभार ही कोई भूलता है क्यों कि अब मैं परिचय के साथ ही नाम दुहरा लेता हूँ—"यह हैं मेरे मित्र मुन्शी राम और ये हैं आनन्द कुमार सिंह" और मैं हाथ मिलाते हुए मन ही मन दोहराता हूं "श्री मुन्शी राम और आनन्द कुमार सिंह।" यदि मैं यह समझूं कि यह दोनों सज्जन फिर भी कभी मिलेंगे तो उन के चले जाने के पश्चात उनके नाम फिर दुहराता हू।

नियमित और व्यवस्थित जीवन भी स्मृति के सुधार और विकास में बहुत सहायक होता है। प्रायः देखा गया है कि जिन लोगों का जीवन अनियमित और अव्यवस्थित होता है, वह भुलक्कड़ होते है। गृहस्थी का सर्वोत्तम नियम यह है कि बरतन, लैम्प, दिया सलाई और पालिश की डिबियां, चाकू, चमचे, औषधियों की शीशियां, चाबियां, पुस्तकें, बच्चों के कपड़े और खिलौने आदि सब अपने अपने निश्चित ठिकानों पर इस ढंग से रखे जाए कि आवश्यकता पड़ने पर एक मिनट भी ढूंढने का कष्ट न करना पड़े। जो चीज जहां से उठाई जाए, इस्तेमाल के बाद वहीं रख दी जाए। जो लोग रसोई की वस्तु उठा कर पुस्तकों की अलमारी मे रख देते है, वे जान बूझकर अपनी स्मृति को तंग करते हैं। घर से बाहर दफ्तर और दुकान में भी सदा व्यवस्था को प्राथमिकता देनी चाहिए। मेज़ के दराज और अलमारी के खाने भिन्न २ चीज़ों के लिए नियत होने चाहिएं, किसी में स्टेशनरी, किसी में डाक, किसी में बिल और वौचर, किसी में रेकार्ड और

किसी में फाईलें। संक्षेप में यह कि किसी भी समय यह न सोचना पड़े कि अमुक वस्तु कहां रखी है। स्मृति पर अनावश्यक बोझ डालना बुद्धिमत्ता नहीं।

जिसको अच्छी स्मृति रखने की इच्छा हो, उसे चिन्ता मुक्त रहना चाहिए। भूत काल की आपत्तियां और भूलें उसके साथ ही चली गई। उन्हें याद कर के और उन पर पछता-पछता कर मस्तिष्क को निढाल क्यों किया जाए? भविष्य की चिन्ता भूत-काल के पछतावे से भी बुरी है। किसी ने ठीक कहा है—भयङ्कर तम आपत्तियाँ वही हैं जो कभी नहीं आतीं।" कल्पित आपत्तियों को क्यों मस्तिष्क पर अधिकार करने दिया जाए? स्मृति हमारे मस्तिष्क का बे-बदल गुण है। उसे बीते हुए दुखों और आने वाली चिन्ताओं के हवाले नहीं किया जा सकता।

बच्चों की स्मृति क्यों अच्छी होती है? उनमें सीखने और याद रखने की शक्ति क्यों अधिक होती है? अध्ययन के अति-रिक्त इसका सबसे बड़ा कारण यह है कि उनके मस्तिष्क चिन्ता के विषैले प्रभावों से मुक्त होते हैं। स्मृति के स्वच्छ और निर्दोष पटल पर ऐसे चमकीले और गहरे चिन्ह बनते हैं कि वर्षों तक नहीं मिटते। प्रत्येक व्यक्ति को अपने बचपन की बहुत सी घटनाएं स्मरण होंगी। स्वयं मुझे अपनी चार पांच वर्ष की आयु की बहुत सी छोटी-छोटी बातें याद हैं जिन को बीते लगभग २३ वर्ष हो गए।

अब स्मृति पटल का वैसा ही स्वच्छ होना असम्भव है क्योंकि हमारे कर्तव्य, क्रियाएँ, सम्बन्ध और अनुभव बहुत विस्तृत हो चुके हैं। हमारे मस्तिष्क बहुत अधिक व्यस्त हो गए हैं। लेकिन अब भी स्मृति को बहुत हद तक आवश्यक उलझनों से दूर रखा जा सकता है। हमारी स्मृति में केवल वही यादें रहनी चाहिएँ जो हमारे क्रियात्मक जीवन में उपयोगी सिद्ध हों और हमारी

उन्नति और सफलता का कारण बनें। जो व्यक्ति अपने मस्तिष्क की खिड़की को हर बुरी भली, उचित अनुचित याद के लिए बराबर खुली रखता है वह अपनी स्मृति को कबाड़िये की दुकान बना देता है। अच्छा यही है कि कोई व्यर्थ बहस न की जाए, कोई झूठी बात न सुनी जाए, कोई अर्थ-रहित पुस्तक न पढ़ी जाए और कोई अनावश्यक बात याद रखने का प्रयत्न न किया जाए।

कोई आघात इतना मूल्यवान नहीं हो सकता कि उसकी याद सदा के लिए अपने मन में सुरक्षित रखने का प्रयत्न किया जाए। यह ठीक है कि कुछ आघात और दुर्घटनाएँ शरीर और आत्मा पर बड़ा घातक प्रभाव डालती हैं। जो लोग उनको सहन नहीं कर सकते, पागल हो जाते हैं। यदि यह बात किसी की शक्ति में न रहे तो क्षम्य है अन्यथा किसी आघात को जान बूझ कर ताजा करते रहना उचित नहीं। इंगलैंड के प्रसिद्ध लेखक हरबर्ट एन० केसन (Herbert N. cason) ने एक स्त्री के बारे में लिखा है कि वह अपने दो बच्चों को मृत्यु के पश्चात उनके चित्र सामने रख कर प्रति दिन एक घंटा रोया करती थी। उसके तीन बच्चे जीवित थे। इस पर भी मृत बच्चों की याद में उसने अपना और अपने परिवार का जीवन दूभर कर रखा था। केसन इस सम्बन्ध में लिखता है, "मेरे मतानुसार यह एक दर्दनाक भूल थी। उसे अपने आघात को भूलने का प्रयत्न करना चाहिए था......दुख और चिन्ता उस मूल्य का एक अंश है जो हम जीवन के बदले अदा करते हैं। यह मूल्य इतना अधिक नहीं होना चाहिए कि हम अपने आनन्द का दीवाला ही निकाल दें।",

परन्तु भूलना भी एक कला है। जो व्यक्ति भुलाने वाली बातें भुला नहीं सकता वह अपनी स्मृति के रचनात्मक गुणों से अन्याय करता है। जब भी मन पर चिन्ता का बोझ महसूस हो,

उसे उतार फैंकने का ढंग सोचना चाहिए। अनुभव बताता है कि अकेले में कई कष्टदायक स्मृतियां उभर आती हैं। इसलिए दुखित अवस्था मे कभी अकेले नहीं रहना चाहिए। यथा सम्भव अपना अपना अधिक से अधिक समय मित्रों के साथ विताना चाहिए। बेकारी और बीमारी का आपस में गहरा सम्बन्ध है। इसलिए जहां तक हो सके बेकारी से बचा जाए, व्यस्त रहना स्वयं ही एक बहलावा है। दिल के घावों के लिए व्यस्त रहना समय से अच्छी मरहम है। अपनी-अपनी परिस्थिति के अनुसार वह सभी उपाय करने चाहिएं जिनसे परेशानियों से मुक्ति हो सके। परेशान व्यक्ति की स्मृति कभी विश्वस्त नहीं हो सकती।

इन मोटे-मोटे नियमों के पालन से हम अपनी स्मरणशक्ति का सुधार कर सकते हैं, उसे उत्तम और लाभदायक बना सकते हैं। यह अतिशयोक्ति नहीं कि जिन लोगों ने जीवन और मानवता की कोई सेवा की है, वह अन्य गुणों के अतिरिक्त अच्छी स्मरण शक्ति भी रखते थे। यदि हम उनके चरण चिन्हों पर चलना चाहते है तो हमे भी स्मृति विकास के प्रति उदासीन नहीं होना चाहिए।

स्वास्थ और विचार

यह बात प्रसिद्ध है कि एक पण्डित जी के शिष्य कभी कभी उनकी कठोरता से तंग आकर उनसे छुट्टी पाना चाहते तो आपस में मिल कर एक चाल चलते। उनमे से एक आता और नमस्कार करके कहता, "पण्डित जी, आप ठीक तो हैं, कुछ चिन्ति से प्रतीत होते हैं ?" पण्डित जी कहते, "भाई, रात को नींद में कमी रह गई।" दूसरा आता और बड़े चिंतातुर स्वर में पूछता, "गुरू जी, आपका स्वास्थ ठीक तो है ? आंखे कुछ लाल हैं और मुख पर भी ताप के चिन्ह दिखाई दे रहे है।" पण्डित जी उत्तर देते, "हां, कुछ ज्वर सा अनुभव कर रहा हूँ।" तीसरा आकर इन शब्दों में चिन्ता व्यक्त करता, "पण्डित जी, आप आज कुछ बीमार दिखाई देते है।" अब पण्डित जी को विश्वास हो जाता कि वह सचमुच बीमार हैं। पाठशाला से उठते और सीधे अपनी कोठड़ी में जाकर लेट जाते। नाड़ी देखी जाती तो उनको सचमुच ही ज्वर होता।

यह कहानी हो या सचाई, परन्तु जो लोग मनोविज्ञान से परिचित है उनको यह विश्वास करने मे कोई झिझक न होगी कि उपर्युक्त घटना असम्भव नहीं। मनुष्य की मानसिक अवस्था का उसके शरीर पर सीधा प्रभाव पड़ता है। यदि किसी अच्छे भले व्यक्ति को यह भ्रम हो जाए कि वह बीमार है तो उसका बीमार हो जाना असम्भव नहीं। इसके विपरीत यदि कोई व्यक्ति यह विश्वास कर ले कि वह स्वस्थ है तो उसका स्वस्थ हो जाना भी सम्भव है। विचारों की इस अच्छी या बुरी शक्ति और रचनात्मक व ध्वंसात्मक परिणामों से कोई इन्कार नहीं कर सकता।

शरीर का अपना कोई इरादा नहीं, कोई राय नहीं और कोई अधिकार नहीं। मस्तिष्क सारे शरीर का सम्राट है और इस पर राज्य करता है। उदाहरणतया जब वह देखता है कि शरीर जिस सड़क पर चल रहा है, उसी सड़क पर सामने से मोटर आ रही है तो वह उसे तुरन्त एक ओर हट जाने की आज्ञा देता है। शरीर हट जाता है और खतरे से बच जाता है। हमारे हाथ, हमारे पांव, हमारी आंखे, हमारा सिर हर खतरे और हर दुर्घटना के समय मस्तिष्क की आज्ञाओं की पूर्ति के लिए तैय्यार रहते हैं। परन्तु यदि मस्तिष्क ड्यूटी पर न हो। यह नींद, नशे या अचेतनता की अवस्था में हो तो उसके अतिरिक्त कोई शक्ति ऐसी नहीं होती जो हमारे शरीर को खतरे या दुर्घटना की चेतावनी दे सके। ऐसी अवस्था मे शरीर न तो किसी आक्रमण से रक्षा कर सकता है और न किसी खतरे से भाग सकता है। उसके लिए जीवन और मृत्यु एक समान है।

मस्तिष्क जीवन की धुरी है। वातावरण से प्रभावित होकर यह जितनी निराशा, दुःख, हर्ष और आनंद प्राप्त करेगा, उतना ही यह सब शरीर पर अच्छा या बुरा प्रभाव डालेगा। जिस व्यक्ति का मानसिक स्वास्थ अच्छा नहीं वह सदा चिन्ता-ग्रस्त रहता है। जो जीवन को आशा वादी की बजाए निराशा वादी दृष्टि कोण से देखता है, अपने आप को कल्पित खतरों में घिरा समझता है और भविष्य में आने वाले कल्पित दुःखों से भयभीत और ग्रस्त रहता है उसने एक प्रकार से जान बूझ कर अपने शरीर मे ऐसे कीटाणुओं को पलने दिया है जो उसे घुन की तरह खाते रहते हैं। उसके स्वस्थ रहने के विषय मे कुछ विश्वास पूर्वक नहीं कहा जा सकता। यदि उसको अपने स्वास्थ से प्रेम है तो अवश्य ही उसे अपनी मानसिक अवस्था बदलनी पड़ेगी।

विचार शरीर को किस तरह प्रभावित करते हैं; इसकी व्याख्या

के लिए मैं एक उदाहरण की सहायता लेना चाहता हूँ। हम में से अनेक यह जानते हैं कि घबराहट (जो भय का एक रूप है) की अवस्था में शरीर के सभी अंगों पर कम्पन छा जाता है। प्रयत्न करने पर भी मुंह से आवाज़ नहीं निकलती। मुंह में थूक सूख जाती है और मुख पर ठण्डे पसीने की बूंदें आ जाती हैं। इसी प्रकार भय श्वास, रक्त स्राव, दिल की हरकत, स्नायु व्यवस्था और भूख पर प्रभाव डालता है। भय का प्रभाव हमारी ज्ञानेन्द्रियों पर भी हो सकता है। देखने, सूंघने, सुनने और चखने की क्षमताएं नष्ट हो सकती हैं। अनेक अवस्थाओं में उनके अंदर तीव्रता भी आ सकती है। हमें वैसे ही आवाज़ें सुनाई देती हैं। शक्लें दिखाई देने लगती हैं। स्वादिष्ट से स्वादिष्ट पदार्थ बुरा लगने लगता है।

मानव मस्तिष्क की स्वास्थ बाधक अवस्थाओं में बहुत सी भावनाए शामिल हैं। क्रोध का प्रभाव पेट पर बुरा पड़ता है। यह रक्त को पानी के समान पतला कर देता है भय शरीर की विभिन्न क्रियाओं में बुरी तरह से बाधक होता है। चिन्ता, घृणा, ईर्ष्या, घबराहट, निराशा, रोष, उदास, बे दिली और चिड़-चिड़ा-पन आदि भी भय के ही घातक फल हैं। आजकल के प्रचलित स्नायु रोग भय से ही उत्पन्न होते हैं। इसी प्रकार चिन्ता भी शारीरिक स्वास्थ की शत्रु है। बहुत से लोग अच्छा खाने, पीने और व्या-याम करने के बावजूद भी स्वस्थ नहीं। चिन्ता ने उन्हें रोगी बना रखा है। ऐसी घटनाएं देखने और सुनने में आई है कि चिन्ता के कारण एक ही रात में सारे बाल सफेद हो गए। अनेक लोग केवल चिंता के कारण क्षय जैसे घातक रोग में फंस जाते हैं। ईर्ष्या भी मस्तिष्क की स्वास्थ घातक अवस्थाओं में शामिल है। किसी ईर्ष्यालु व्यक्ति के मुख पर कभी ताजगी और प्रसन्नता दिखाई नहीं दे सकती। जितना कोई व्यक्ति ईर्ष्यालु होगा, उसका

मुख उतना ही खराब और बे रौनक होगा।

भ्रम और भय का बड़ा निकट सम्बन्ध है। यह दोनों मनुष्य के जीवन के बहुत बड़े शत्रु है। जिस व्यक्ति को कोई भ्रम होगा उसे कोई न कोई भय अवश्य परेशान करता रहेगा। गरीबी, बीमारी, दुर्घटना, हानि और मृत्यु का भय प्रायः उन लोगों के सिर पर सवार रहता है जिनका मस्तिष्क जीवन के चमकदार पहलुओं की उपेक्षा करके भ्रम के अंधेरों में भटकता रहे। जिस व्यक्ति ने भ्रम का प्रभाव स्वीकार कर लिया उसकी इच्छा शक्ति और सुरक्षा शक्ति दोनों ही बेकार होकर रह जाएंगी। ऐसे व्यक्ति का बिना कारण बीमार हो जाना तो क्या मर जाना भी विस्मय की बात न होगी। जिन दिनों रूस मे काली प्लेग (Black Plague) फैली तो सहस्रों लोग इस भ्रम से ही मर गए कि उनको बीमारी हो गई है। परीक्षण से पता चला कि रोग के कीटाणु उनके पास तक नहीं फड़के थे। भ्रम और भय के चमत्कार ने अनेक लोगों को बिन आई मौत मार डाला।

डाक्टरों और हकीमों को इस बात का पर्याप्त अनुभव होगा कि उनके पास बहुत से ऐसे रोगी आते रहते हैं जो वस्तुतः बीमार नहीं होते। उनको बीमारी का भ्रम बीमार कर देता है। उन्हे यदि यह विश्वास दिलाने का प्रयत्न किया जाए कि वह बीमार नहीं, भले चंगे है तो वह विश्वास नहीं करेंगे। उन्हें कोई न कोई औषधि देनी ही पड़ती है। इसके बिना उनका स्वस्थ होना असम्भव प्रतीत होता है। मेरे एक मित्र डाक्टर हैं। अपने कार्य में निपुण हैं। उन्होंने मुझे बताया कि मैं ऐसे रोगियों को भी कोई औषधि अवश्य दे देता हूं चाहे सोडा बाई कार्ब की पुड़ियां या सादा पानी का 'मिक्सचर' हो क्यों न हो। यदि वह उनसे यह कहे कि उनको कोई कष्ट नहीं, तो वह

मानेंगे नहीं। उसके निदान को ठीक न समझ कर किसी अन्य डाक्टर के पास चले जायेंगे।

योग्य और अनुभवी डाक्टर या हकीम जब किसी रोगी का इलाज शुरू करता है तो वह उसकी मानसिक अवस्था और रोग पर उसके प्रभावों को भी ध्यान में रखता है। रोग साधारण हो या भयंकर, रोगी को कभी निराश नहीं करता। प्रथम निरीक्षण में ही उसको तसल्ली देकर उसका भय दूर करने का प्रयत्न करता है। वह इस तथ्य को भली भांति समझता है कि रोगी की आशा पूर्ण मानसिक अवस्था उसके स्वस्थ होने के लिए उतनी ही आवश्यक है जितना ठीक और उचित इलाज। बहुत से लोभी और स्वार्थी डाक्टर अपने इलाज का महत्व बताने के लिए या अधिक से अधिक पैसे बटोरने के लिए रोगी को यह जताना आवश्यक समझते हैं कि उसका रोग असाधारण है। यह व्यवहार नैतिक दृष्टि से निन्दनीय होने के अतिरिक्त पेशे और व्यापार के नियमों के भी विरुद्ध है। रोगी की मानसिक अवस्था पर बुरा प्रभाव डालना बहुत ही बुरा है।

शारीरिक स्वास्थ पर विचारों के प्रभाव की सत्ता का ज्ञान कोई नवीन खोज नहीं। सैंकड़ों वर्ष पूर्व भी मनुष्य इस तथ्य से परिचित था। वह औषधियों के बिना केवल विचारों को प्रभावित करके ही रोग को दूर करने में विश्वास रखता था। तावीज, गण्डे जंतर मंतर, टोने टोटके सब उसी पुरातन मनुष्य के आविष्कार हैं जो आज तक भी प्रचलित है। जो व्यक्ति इन चीजों में विश्वास नहीं रखता, उसको इन चीजों से कोई लाभ नहीं होता यदि किसी व्यक्ति को जादू या बुरी दृष्टि पर विश्वास नहीं, उसे इन चीजों से कोई हानि नहीं हो सकती।

विश्वास या विचार की इस शक्ति को आधुनिक मनोवैज्ञानिकों ने भी स्वीकार किया है। हिप्नाटिज्म (Hypnotism) या

मैसमरिज्म (Mesmerism) इससे अधिक कुछ नहीं कि मनुष्य की मानसिक अवस्था को प्रभावित करके रोग को दूर किया जाए। इस सिलसिले में फ्रांस के प्रसिद्ध डाक्टर कोने (Cone) ने विस्मय पूर्ण सफलता पाई है। उसने अनेक रोगियों को केवल विचार शक्ति से ठीक कर दिखाया। उनमें से बहुत से रोगी बहुत विकट रोगों में ग्रस्त थे। परन्तु कोने उनकी मानसिक शक्तियों पर ऐसा प्रभाव डालता था कि वर्षों के रोगी दिनों में स्वस्थ हो जाते थे।

सामान्य अध्ययन और अनुभव की बात है कि कोई व्यक्ति यदि अत्याधिक निराशा और दुख की अवस्था में पड़ा हो और उस समय उसे ऐसा शुभ समाचार मिले जिसकी उसे प्रतीक्षा हो तो आप देखेंगे कि वह अपने कष्ट को भूल जाएगा। उसके मुख पर लालिमा की झलक आ जाएगी और उसकी नस-नस में ऐसी शक्ति आ जाएगी जो उसे तुरन्त स्वस्थ कर देने में सहायक बनती है। चंद ही दिनों के अन्दर उसका रोग उड़ जाता है। वह ऐसा स्वस्थ प्रतीत होता है, मानो कभी बीमार ही नहीं हुआ। हमारे देश के दार्शनिक कवि गालिब ने किसी ऐसे ही अनुभव के आधार पर कहा होगा।

उन के देखे से जो आ जाती है मुंह पे रौनक। -
वह समझते है कि बीमार का हाल अच्छा है॥

यह बात बहुत कम लोग जानते हैं कि मनुष्य की मानसिक अवस्था जहाँ उसे कई विषम रोगों से छुटकारा दिला सकती है वहाँ बुढ़ापे के विरुद्ध सफल टक्कर ले सकती है। इसका मुख्य कारण यह है कि यदि शरीर के अंग आँखे, कान, स्नायु और खाल आदि छोटी आयु में ही ह्रासोन्मुख हो जाते हैं तो मस्तिष्क ६० वर्ष की आयु में जाकर जवान होता है। मनोविज्ञान शास्त्रियों और विशेषत: अमरीका के जार्ज लाटन (Gerge Lawton) का

यह विश्वास है कि यदि हम मस्तिष्क के इस गुण से लाभ उठाएं तो हमारा शरीर भी देर तक जवान रह सकता है।

उनके अनुसार बुढ़ापे को पराजित करने का सफल उपाय यह है कि मनुष्य अपने मस्तिक को सदा विकेक-शील रखे। अपने आस पास के वातावरण मे दिलचपस्पी लेता रहे। कभी यह न समझे कि वह आयु बढ़ जाने के कारण नई नई बाते सीखने के योग्य नहीं रहा। इसके विपरीत सदा अपने ज्ञान मे वृद्धि के लिए तत्पर रहे। ऐसी क्रियाओं में व्यस्त रहे जिन में हाथों के साथ साथ मस्तिष्क को भी काम करने का अवसर मिले। नये मित्र बनाए। नवीन यात्रा करे, नवीन पुस्तकें पढ़े, नवीन आविष्कारों से लाभ उठाए, नए फैशन अपनाए। बच्चों को खेलाए और नवयुवकों के साथ खेल सके। यह बात याद रखे कि बुढ़ापा आयु पर नहीं विचारों पर निर्भर है।

यह सोचना महा पाप है कि हम बूढ़े हो रहे है, हमारा मस्तिष्क नई बातें सीखने के योग्य नहीं रहा, हमारा रक्त दिन प्रतिदिन शीतल हो रहा है, दृष्टि मन्द हो रही है, बाल सफेद हो रहे है, मुख पर झुर्रियां पड़ रही है। यह निराशाजनक विचार मनुष्य को शीघ्र वृद्ध बना देते हैं।

हमारे देश में एक बहुत बुरी प्रथा है कि जैसे ही किसी के सिर के बाल पकने शुरू होते हैं, हम उसे बुढ़ापे और बुजुर्गी का सर्टी-फीकेट दे देते है। उसे बाबा, बुड्ढा या ऐसे ही नामों से बुलाना शुरू कर देते हैं। अनेक लोग इन गलत नामों से प्रभावित होकर वृद्ध हो जाते है या अपने आपको वृद्ध समझ लेते हैं। वृद्धा-वस्था का अर्थ वह यह समझते हैं कि जीवन की प्रत्येक दिल-चस्पी, मनोरंजन और खेल कूद को छोड़ कर शरीर का ह्रास स्वीकार कर लिया जाए। एक सज्जन कई वर्ष विदेशों में बिताने के पश्चात भारत लौटे, कुछ दिन हुए एक मित्र ने बात चीत के

दौरान उनके स्वास्थ की बड़ी प्रशंसा की। इस पर उन्होंने कहा, कुछ वर्ष पहले मेरा स्वास्थ बहुत ही अच्छा था। परन्तु जब मैं स्वदेश लौटा तो जहाज से मेरा सामान उतारने वाले कुली ने मुझे 'बाबा' कह कर पुकारा। इसके पश्चात कई मित्रों और सम्बन्धियों ने भी मेरे साथ वैसा ही व्यवहार किया जो किसी वृद्ध व्यक्ति के साथ करना चाहिए। उस समय से लेकर आजतक मैं यही अनुभव कर रहा हूँ कि मैं वस्तुतः ही वृद्ध हो गया हूँ। भारत की इस प्रथा से मेरे मन को बड़ी ठेस लगी है। मैं चाहता हूँ कि कोई कानून ऐसा बने कि जो व्यक्ति मेरा पोता न होकर मुझे बाबा कहे मैं उसके विरुद्ध मुकदमा चला सकूं। वह व्यक्ति सभ्य नही कहा जा सकता जो अपने मित्रों, सम्बन्धियों और मिलने मिलाने वालों का हाल इन शब्दों द्वारा पूछता है।

"आप कुछ कमजोर तो नहीं हो गए ?"
"आप का जी खराब तो नही रहता ?"
आपका स्वास्थ क्यों गिर गया है ?"

निस्सन्देह इन वाक्यों द्वारा सहानुभूति प्रकट करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु सहानुभूति का यह तरीका गलत है। यदि किसी का स्वास्थ अच्छा दिखाई नहीं देता और उसके मुख से उसकी अस्वस्थता प्रकट हो रही हो तो भी उससे इस प्रकार के प्रश्न नहीं करने चाहिए। इससे उसके मन पर और उसकी मानसिक अवस्था पर दुष्प्रभाव पड़ने का भय है। इस प्रकार की बाते अच्छे भले स्वस्थ व्यक्ति को भी अपने स्वास्थ के बारे मे सन्देह मे डाल सकती है। किसी रोगी का हाल पूछते समय और भी सावधानी से काम लेना चाहिए। उसके रोग के बारे मे कभी ऐसी राय नहीं देनी चाहिए जो उसके लिए चिन्ता, दुख और निराशा का कारण बने।

वह व्यक्ति बड़ा भाग्यवान है जिस की मानसिक अवस्था

आशापूर्ण और स्वस्थ है। परन्तु स्मरण रखना चाहिए कि किसी भी व्यक्ति की मानसिक अवस्था उसके बाल्यकाल के शिक्षण और वातावरण से ऊँची नहीं हो सकती। जो माता पिता हर समय अपने बच्चों को डांटते डपटते हैं, उन्हें लज्जित करते और मारते पीटते रहते हैं, उनके नन्हे हृदयों को कटाक्षों से घायल करते रहते है, उन्हें देवों, परियों और जिन्नों के किस्से कहानियां सुना कर कायर बना देते हैं, उन्हें प्रशंसा, आदर और मनोरंजन से वंचित रखते है, उनके बच्चे मानसिक तौर पर जीवन भर बच्चे ही रहते हैं। उनके मस्तिष्क पर हर समय निराशा और उदासी की घटा छाई रहेगी। वह किसी कठिनाई, किसी दुर्घटना और किसी रोग का बहादुरी से मुकाबला नहीं कर सकेंगे। और वह अपना सारा जीवन सहम सहम कर वितायेंगे।

प्रशंसा, हर्ष और प्रोत्साहन से परिपूर्ण बचपन ही जीवन भर के दृढ़, महान, निर्भीक विचारों और अच्छे स्वास्थ्य की आधार शिला बनते हैं।

अच्छे स्वास्थ के इच्छुक को अपने विचारों की पवित्रता और शिष्टता की ओर भी अवश्य ध्यान देना पड़ेगा। उसे सभी मानसिक बुराइयों से बचना होगा। मेरा अपना अनुभव है कि झूट बोलने तक से स्वास्थ पर बुरा प्रभाव पड़ता है। झूठ बोलने वाले व्यक्ति को हर समय यह चिन्ता रहेगी कि उसके ढोल का पोल न खुल जाए। चुगली भी स्वास्थ की शत्रु है। चुगली करने वाले को सदा यह भय रहता है कि मैंने जिस व्यक्ति के यश पर धब्बा लगाया है वह मेरी चुगली को जान कर मेरा शत्रु बन जाएगा। ईर्ष्या और प्रतिक्रिया की भावना मनुष्य के रक्त को जला डालती है। इस लिए आवश्यक है कि इन दोषों से बचा जाए। इसके साथ ही साथ अपने मन में उच्च नैतिक विचार भरने चाहिए। प्रशंसा, प्रसन्नता,

प्रोत्साहन, क्षमा, उपेक्षा, सत्य-वादिता और ईमानदारी द्वारा अपने स्वास्थ को रक्षा की जाए।

अच्छे स्वास्थ के लिए केवल खुराक, व्यायाम और स्वच्छता पर ही निर्भर नहीं करना चाहिए अपितु महानतम प्रकृति प्रदत्त शक्ति विचार और कल्पना से भी लाभ उठाना चाहिए। अपने दैनिक जीवन की प्रत्येक क्रिया मे विचार की आत्मा समोनी चाहिए। सैर करने निकलो तो यह समझो कि शरीर की नाड़ियों मे रक्त की गति तीव्र हो गई है। हरे भरे खेतों और दूर दूर तक फैले दृश्यों को देखते हुए आशा रखो कि आंखे स्वस्थ हो रही हैं। जब दीर्घ श्वास लो तो महसूस करो कि छाती बढ़ रही है। खाना खाते समय कल्पना करो कि एक एक ग्रास शरीर को अधिक से अधिक शक्ति देगा। दातुन करते समय यह समझना चाहिए कि मसूढ़े और दांत दृढ़ हो रहे है। स्नानागार में प्रविष्ट हो कर अपने शरीर को देखते ही यह भरोसा करो कि मेरा स्वास्थ दिन प्रतिदिन अच्छा हो रहा है। काम करते समय यह विश्वास रखो कि परिश्रम से आपकी मानसिक और शारीरिक शक्ति में वृद्धि हो रही है। रात को बिस्तर पर इस विश्वास से लेटो कि दिन भर मे जितनी जीवन शक्ति का व्यय हुआ है वह रात की गहरी और मीठी नींद द्वारा पुनः मिल जाएगी।

यह निश्चित कर लीजिए कि आपको किस प्रकार के स्वास्थ की आवश्यकता है और आप अपने शरीर के विभिन्न अंगों को किस रूप में देखना चाहते है। आप की मानसिक शक्ति आपकी सहायता करेगी। शर्त केवल यह है कि आप दैनिक अभ्यास में विघ्न न पड़ने दें। इस क्रिया को अपने जीवन का अभिन्न अंग बना ले। समय आएगा जब आपको विश्वास हो जाएगा कि आप की विचार शक्ति आपके स्वास्थ पर अच्छा प्रभाव डाल रही है।

रुग्णावस्था में

आप अच्छे रोगी कैसे बन सकते हैं?

यह वाक्य आप में से बहुत लोगों को नवीन और अनोखा प्रतीत होगा। आप सोचेंगे कि इसके स्थान पर यदि यह होता कि आप अच्छे हकीम, अच्छे वकील या अच्छे व्यापारी कैसे बन सकते है तो इसका कुछ अर्थ भी था। मगर अच्छा रोगी बनना तो सर्वथा निराली बात है। परन्तु ऐसा नहीं है। जो व्यक्ति रोगी हो, वह अच्छा रोगी भी हो सकता है, बुरा भी। सभ्यता और शिष्टता स्वस्थ व्यक्ति तक ही सीमित नहीं हो सकती। रुग्णावस्था में भी कुछ नियमों का पालन करना पड़ता है। यह नियम हमें स्वस्थ होने मे ही सहायता नहीं देते, हमारे व्यक्तित्व में सौंदर्य और महानता भी पैदा करते हैं।

अगर कोई व्यक्ति बीमार है तो उसे पहले यह विश्वास करना होगा कि बीमारी हम पर लिखित भाग्य के अनुसार नहीं आती। रोग को भाग्य का फल समझने की प्रथम हानि तो यह है कि रोगी अपनी विरोध शक्ति का पूरा लाभ नहीं उठा सकता। कई बार वह अपने आपको पूर्णतया रोग के हवाले कर देता है। इसके विपरीत ठीक विश्वास यह है कि प्रकृति अपने सभी जीवों को स्वस्थ देखना चाहती है। उसके खुले आंगन में जीवन बिताने वाले जीव, वह जंगली पशु हों अथवा आकाश में उड़ने वाले पक्षी, कभी बीमार नहीं होते। जन्म से लेकर मरने के समय तक वह स्वस्थ रहते है। भूमि की मिट्टी मे, सूर्य रश्मियों मे और पानी की लहरों में जीवन स्वस्थ और शक्ति की अमूल्य निधि निहित है। रोग का ईश्वर या प्रकृति से कोई सम्बन्ध नहीं। ईश्वर ने

स्वास्थ पैदा किया है, रोग नहीं और जो चीज़ उसने पैदा ही नहीं की वह हमारे भाग्य में कैसे लिखी हो सेकती है।

अच्छा रोगी वह है जो बीमारी के दिनों मे सदा आशावादी रहे। किसी भी अवस्था में निराश न हो और उसका मन कभी न डोले। सम्भव है कोई मिलने वाला जो शिष्टाचार नहीं जानता या कोई डाक्टर जो अपने पेशे को भली भांति न जानता हो, उसके मुंह पर ही कह दे कि उस की अवस्था खतरे से खाली नहीं परन्तु ऐसे किसी भी मत से प्रभावित नहीं होना चाहिए। हम आस-पास के अनुभव से बहुत से ऐसे उदाहरण देख सकते है कि जिन रोगियों को वड़े-वड़े निपुण डाक्टरों और हकीमों ने जवाब दे दिया वे भी मृत्यु के मुख से निकल कर जीवन की गोदी मे आ गए। रोगी की अपनी मानसिक स्थिति का प्रभाव उस पर इलाज और सेवा से भी अधिक होता है। वह यदि निराशावादी है तो साधारण सा रोग भी उसके लिए भयङ्कर सिद्ध हो सकता है और यदि उसकी प्रकृति आशावादी है तो सम्भव है क्षय आदि घातक रोगों से भी बच जाए।

मनुष्य की मानसिक स्थिति का उसके शरीर पर प्रभाव पड़ता है। यह बात कल्पना मात्र ही नहीं, एक मनो वैज्ञानिक सत्य है। आधुनिक एवं सनातन सभी चिकित्सकों ने इसे स्वीकार किया है और इससे लाभ उठाता है। विलियम जेम्स (William James) लिखता है :"मानसिक स्थिति का फल कुछ शारीरिक क्रियाओं के रूप मे प्रकट होता है। इससे श्वास, रक्त-स्राव, पट्ठों के तनाव और गिलटियों व अंतड़ियों की क्रिया में स्पष्ट नहीं तो अस्पष्ट अंतर अवश्य पड़ता है। मस्तिष्क की सभी स्थितियां, साधारण विचार और अनुभव तथा, शारीरिक व्यवस्था पर प्रभावकारी होती है।" अमरीका के स्वास्थ विभाग के एक कर्मचारी डा० हार्वे विल्ले (Dr. Harvey Wiley) का कथन

है कि भय शरीर के कुछ रसों को दुर्गन्ध युक्त विष में बदल देता है और यह विष शरीर में फैल कर रोग पैदा करता है। और यह बात गलत नहीं।

वास्तव में बीमारी का भय बीमारी से भी अधिक खतरनाक होता है। केवल १० प्रतिशत सांप विपैले होते हैं परन्तु अनेक लोग विष-विहीन सांपों के काटने से मर जाते हैं। मृत्यु का भय उनके मन मे जीवन की आशा ही शेष नहीं रहने देता। कोई रोगी वास्तव में स्वस्थ होने की इच्छा रखता हो तो उसे साहस पूर्वक रोग का मुकाबिला करना चाहिए। उसे अपनी इच्छा शक्ति, डाक्टर और सबसे ऊपर प्रकृति पर पूरा भरोसा करना चाहिए कि वह स्वस्थ हो जाएगा। इससे वह निश्चित तौर पर ठीक हो जाएगा।

अच्छा बीमार वह है जो अपने मित्रों, सम्बन्धियों और पड़ोसियों में अपनी बीमारी का शोर नहीं मचाता। थोड़े नहीं बहुत से लोग ऐसे हैं जो अपनी साधारण सी बीमारी भी नहीं छुपा सकते। वे अपने प्रत्येक मिलने वाले से अपने कष्ट कहते फिरेंगे। यह अच्छी आदत नहीं। यह इस बात का प्रमाण है कि रोग का व्यक्तित्व बहुत छोटा है। अपने दुःखों और परेशानियों का जिक्र करके हम अपने मिलने वालों की क्या सेवा कर सकते हैं? किसी व्यक्ति को यह अधिकार नहीं कि वह दूसरे लोगों को अपने दुःख में शामिल होने पर मजबूर करे। यदि कोई रोग अपने आप प्रकट होता है तो अलग बात है अन्यथा रोग बीमार का सर्वथा निजी मामला है जिस का ज्ञान केवल चिकित्सक को होना चाहिए। कई लोग अपने से मिलने वालों के सामने अपनी बीमारी का हाल ऐसे मजे लेकर बयान करते हैं जैसे बीमार होना उनके लिए गर्व की बात हो। परन्तु वह समय निकट ही है जब बीमार होना गर्व का विषय नहीं लज्जा की

बात समझी जाएगी। रोग को किसी नैतिक अपराध के समान समझा जाएगा। जिस प्रकार हम अपनी नैतिक त्रुटियों को छुपाते हैं, वैसे ही रोगों को छुपाया करेंगे। गर्व का विषय स्वस्थ शरीर ही होगा।

बड़ी देर हो गई मैंने इंगलैण्ड के एक उच्च श्रेणी के लेखक की जीवनी पढ़ी। उसमे लिखा था कि वह लग भग बीस वर्ष तक पेट की बीमारी में ग्रस्त रहा। उसी रोग से उसकी मृत्यु हो गई। परन्तु उसके संयम की प्रशंसा किए विना नहीं रहा जा सकता जब हम देखते हैं कि जीवन भर डाक्टर के अतिरिक्त किसी को उसके रोग का पता नही लग सका। अपनी पत्नि और बेटी के सामने भी उसने कभी अपना कष्ट प्रकट नहीं किया। जो लोग अपने साधारण रोगों को भो छुपा नहीं सकते उन के लिए उपरोक्त व्यक्ति का उदाहरण अनुसरणीय है।

अच्छा बीमार डाक्टर या हकीम के सामने अपनी बीमारी का पूरा हाल साहस पूर्वक और विना झिझक बयान कर देता है। यदि वह बताते समय पूरा विवरण नहीं देता तो हानि भी उसी को होती है। रोग के निदान मे त्रुटि रह जाएगी। ठीक इलाज नहीं हो सकेगा। सम्भव है गलत इलाज से ब मारी और भो बिगड़ जाए। अनेक नवयुवक जा पथभ्रष्ट होकर या अपनी मूर्खता से रोग खरीद लेते हैं, उनका प्रयास यह होता है कि घर बैठे ही इश्तहारी औषधियों से अपना इलाज कर ले। जब ऐसा नहीं हो सकता तो मजबूर होकर किसी डाक्टर के पास जाते है। वहा लज्जा से बचने के लिए पूरी बात नहीं बताते।

परिणाम वही होता है जो ऊपर लिखा जा चुका है।

डाक्टर से कोई बात न छुपाई जाए। कोई भूल, मूर्खता या बदपरहेजी छुपाने का प्रयत्न न किया जाए। रोग चाहे किसी नैतिक पाप के कारण ही क्यों न पैदा हुआ हो, डाक्टर के

सामने सब कुछ कह देना चाहिए। कई रोगी सम्भवतः डाक्टर के सामने सब कुछ इस लिए नहीं कहते कि कहीं उनका भेद न खुल जाए और उनका सम्मान खतरे में न पड़ जाए। यह भय निराधार है। कोई भी डाक्टर या हकीम अपने रोगियों के भेद को नहीं खोलेगा। रोगी अपने रोग को नैतिक दृष्टि से महत्त्व देता है परन्तु डाक्टर उसे अपने काम की दृष्टि से देखेगा। कोई बुरे से बुरा रोग भी डाक्टर के लिए विस्मय का कारण नहीं हो सकता।

अच्छा और बहुत अच्छा रोगी वह है जो संतोष और संयम का साथ बीमारी के दौरान भी नहीं छोड़ता और यथा सम्भव पीड़ा को प्रकट नहीं होने देता। मैंने ऐसे लोग देखे हैं जो तीव्रतम पीड़ा होने पर भी चुप रहते हैं। कई वर्ष पूर्व मैंने एक अधेड़ स्त्री देखी जिसकी दोनों टांगें एक दुर्घटना के कारण कट गइ थीं। जिस समय वह हस्पताल में लाई गई, तब भी उसकी कटी हुई पिण्डलियों से रक्त की धारा बह रही थी। परन्तु जिस सतोष और सयम के साथ वह अपनी पीड़ा को होंठों तक पहुँचने से रोकती थी उसको व्यक्त करना मेरे लिए आज भी उतना ही कठिन है जितना उस समय था जब मैं उसे अपने घावों से मक्खियां उड़ाते देख रहा था। ऐसा ही प्रशसनीय संयम मैंने एक नवयुवक में देखा था। उसका एक कन्धा और बाजू सोडा-कास्टिक से जल गया था। कास्टिक का विष उसके रक्त और हड्डियों में फैल गया था और उसका शरीर फूल कर कुप्पा हो चुका था। घाव इतने गहरे और कष्टदायक थे कि करवट लेना भी कठिन था। ज्वर के ताप के कारण शरीर को छूना असम्भव था। सिर का दर्द इतना तेज था कि नींद हराम हो गई। वह कई सप्ताह बिस्तर पर लेटा रहा। मैं लगभग प्रतिदिन उसका हाल पूछने जाया करता था परन्तु एक दिन भी उसके मुख से आह या

'उफ़' न सुनो ।

मैं यह मानने के लिए तैयार हूं कि हम में से प्रत्येक व्यक्ति ऐसा संयम नहीं दिखा सकता । कुछ लोगों की प्रकृति ही बड़ी संयमी होती है । परन्तु मैं अधिकतः उन लोगों से कहता हूं जो साधारण रोग मे भी चीखने चिल्लाने से नहीं रुकते । एक बार मेरे एक परिचित को मामूली ज्वर हो गया । वह मेरे मकान के साथ ही एक कमरे में रहते थे । और इस ढंग से चीखते चिल्लाते थे कि हम परेशान हो गए । मैं उनके पास गया तो स्वयं ही कहने लगे, 'मैं चीखूंगा । मैं चिल्लाऊंगा और आपको सोने नहीं दूंगा । मेरी चारपाई उठवा कर दफ्तर के परले कमरे में बिछवा दीजिए ।' वैसा ही कर दिया गया । मगर वह कमरा सड़क के किनारे था । राह चलते लोग भी उस अनोखे बीमार की पुकार सुनकर ठहर जाते । द्वार पर हर समय भीड़ लगी रहती ।

एक और सज्जन को भी ज्वर था । उसका हाल इससे भी दिलचस्प है । वह अपने कष्ट और परेशानी का प्रदर्शन थरमामीटर के अनुसार करता था । एक व्यक्ति उससे मिलने गया । वह उसके स्वभाव को जानता था । उसने थरमामीटर लगाया और उसको चीखने से रोकने की दृष्टि से तापमान १०२ की बजाए १०१ बताया । वह पहलू बदल कर चुप हो गया । उसी समय उसके लड़के ने भी आकर थरमामीटर लगा दिया और बताया कि तापमान १०२ है । यह सुनते ही वह रोगी फिर कराहने लगा । इस सम्बन्ध में यह बात उल्लेखनीय है कि उस व्यक्ति का शरीर बड़ा सुदृढ़ और मोटा ताजा था । अपने व्यापारिक और घरेलू मामलों में बड़ा उदार, दृढ़ तीव्र और साहसी था । परन्तु तापमान के एक दरजे के अन्तर पर उस ने ऐसी कायरता दिखाई जो उसके व्यक्तित्व में बे-जोड़ प्रतीत होती थी ।

कुछ कोमल स्वभाव के लोग बीमारी में कराहना और 'हाय

हाय करना' अपनी कोमलता के प्रदर्शन के लिए आवश्यक समझते हैं। मध्यम या उच्च श्रेणी के घरानों के लोगों में यह बात प्राय: पाई जाती है। बहुत दिन नहीं हुए हमारे पड़ोस में ही एक नौजवान लड़की को ज्वर हो गया। उसकी शिकायत और बेचैनी इतनी अधिक थी मानो तीव्र पीड़ा और वेदना हो रही है परन्तु आप यह जान कर चकित होंगे कि तापमान ६६ से अधिक न था। कोई व्यक्ति चाहे कैसे ही कोमल स्वभाव का क्यों न हो परन्तु ऐसी असाधारण कोमलता जो आधा दर्जा तापमान भी सहन न कर सके, मुझे भद्दा और घृणित छछोरापन प्रतीत होती है।

अत: यह मानते हुए भी कि प्रत्येक व्यक्ति की सहन शक्ति एक सी नहीं होती, यह कहना अनुचित नहीं कि कम से कम मामूली कष्ट को चुपचाप सहन करना प्रत्येक मनुष्य का कर्तव्य है। वह रोगी कितना अच्छा और प्रिय लगता है जो चीखे न चिल्लाए, न शिकायतों के दफ्तर खोले न माथे पर बल डाले, औषधि पीते समय क्रोधित न हो और न ही पट्टी आदि करते समय अपने कष्ट और बेचैनी का प्रदर्शन करे। बल्कि इसके विपरीत अपने दुख के साथ समझौता करके अपने रोग को अपने लिए सहल बनाने का प्रयत्न करे।

अच्छा बीमार वह है जो अपने इलाज के मामले में जल्दबाजी नहीं करता वरन् दृढ़ता दिखाता। यदि आपको यूनानी चिकित्सा पर विश्वास है तो किसी मित्र या बुजुर्ग के कहने से होम्योपैथी या एलोपैथी का तजुर्बा न कीजिए। प्राय: वही चिकित्सा सफल होती है जिस पर रोगी को स्वयं विश्वास हो। विश्वास स्वयं इलाज है। उसी रोगी की दशा दयनीय है जिसका अपना कोई मत नहीं। उसकी दशा इस प्रकार होती है—मान लिया वह बवासीर के लिए होम्योपैथिक औषधि का महीने भर का 'कोर्स' खरीद लाया। उसका प्रयोग

चार ही दिन किया होता है कि कोई आ बताता है कि मैं भी इसे देख चुका हूँ। इससे कुछ लाभ नहीं होता, यूनानी चिकित्सा अच्छी है। वह कोर्स छोड़ यूनानी चिकित्सा की ओर हो लेता है। अभी नए इलाज के लाभ हानि का कुछ ज्ञान भी नहीं हो पाता कि कोई नया व्यक्ति आकर किसी टोटके की ओर प्रवृत्त करता है। मगर जब इस टोटके से दशा और भी बिगड़ जाती है तो वह कोई इश्तहारी मरहम मंगवा लेता है। उससे कोई लाभ न हुआ तो किसी के कहने सुनने से आपरेशन कराने का निश्चया किया। इस पर कोई आकर बताता है कि कष्ट बहुत होता है। यह विचार भी बदलकर फिर होम्योपैथिक इलाज शुरू किया जाता है। इस प्रकार का रोगी अपनी बीमारी को स्वयं बिगाड़ कर अपने लिए मौत का कुआं खोदता है।

चिकित्सा विधि पर ही नहीं चिकित्सक पर विश्वास होना भी अनिवार्य है। जिस रोगी को अपने डाक्टर की योग्यता पर भरोसा नहीं उसका ठीक होना कठिन है। अच्छी से अच्छी औषधि भी उसे लाभ नहीं पहुँचा सकेगी। एक हकीम साहिब से मेरा पुराना परिचय है। वह इलाके भर मे प्रसिद्ध हैं। दूर दूर से रोगी उनके पास आते है। परन्तु मुझे उनपर विश्वास नहीं। इसलिए मैंने कभी अपने या अपने घर वालों के इलाज के लिए उनको कष्ट नहीं दिया। किसी डाक्टर को चुन लिया जाए तो यह आशा नहीं रखनी चाहिए कि औषधि के गले से उतरते ही काई चमत्कार हो जाएगा। अगर रोग पुराना और जटिल है तो चिकित्सक को इलाज के लिए अधिक से अधिक समय देना चाहिए। कई रोगी स्थिरता के साथ किसी एक डाक्टर या हकीम का इलाज जारी नहीं रख सकते। आज एक से इलाज करवा रहे हैं तो कल दूसरे से। यह अस्थिरता नैतिक तौर पर अनुचित होने के अतिरिक्त चिकिसत्क की दृष्टि से भी हानिकारक है। चिकित्सक को तभी बदलना चाहिए

जब अपने अनुभव से यह प्रकट हो कि उसका इलाज निराशा जनक है। किसी चिकित्सक को रुखाई से जवाब दे देना या उसको बताए बिना किसी अन्य चिकित्सक का इलाज शुरु कर देना अच्छे रोगी को शोभा नहीं देता। पहले चिकित्सक का धन्यवाद करके और उससे मित्रता पूर्वक अनुमति लेकर ही किसी दूसरे का इलाज प्रारम्भ करना चाहिए।

अच्छा बीमार अपनी बीमारी के दिनों में अपने शरीर और मस्तिष्क को विश्राम का पूरा अवसर देता है। कई रोगी बीमार होते हुए भी इधर उधर टहलते या किसी काम में लगे रहते हैं। यह कोई गर्व की बात नहीं कि मनुष्य अपने थके मांदे शरीर से भी पूरा काम लेता रहे। इससे शरीर की विरोध शक्ति को हानि पहुंचती है और रोग के टिक जाने की सम्भावना बढ़ जाती है। शरीर के अतिरिक्त मस्तिष्क को भी पूर्ण विश्राम और शान्ति मिलनी चाहिए। रोगी के लिए अधिक बातें करना, बहस आदि मे भाग लेना अध्ययन और चिन्तन मे व्यस्त रहना उतना ही हानिकारक है जितना शारीरिक श्रम। थकन कोई भी अच्छी नहीं—शारीरिक न मानसिक।

बीमारी के दौरान में ही नहीं, ठीक हो जाने के उपरांत भी कुछ देर तक पूरा आराम करने की आवश्यकता है। बीमारी से उठते ही मनुष्य इस योग्य नहीं हो जाता कि अपने दैनिक कार्य में पूरी लगन से लग जाए। बीमारी से उठने और बीमारी से पहले की स्थिति मे पहुंचने से बीच के काल को हम 'रोग की दुर्बलता' का नाम देते हैं। इस दौरान में शरीर बड़ी तीव्रता से अपनी खोई हुई शक्ति को पुनः प्राप्त करना चाहता है। इसका सादा सा चिन्ह यह है कि भूख बढ़ जाती है। कुछ लोग खाने पीने के मामले में संयम छोड़ देते हैं। रोग के प्रभाव तथा थोड़ी और परहेजी खुराक खाने के कारण पेट इन दिनों में सुस्त होता

है। वह खुराक के अकस्मात दबाव को सहन नहीं कर सकता। यही कठिनाई आंतों को भी होती है। इससे शरीर की आंतरिक व्यवस्था बिगड़ जाती है और गया हुआ रोग लौट आता है।

जो लोग बीमारी से उठते ही शारीरिक और मानसिक श्रम में लग जाते हैं उनका स्वास्थ कभी अच्छा नहीं रह सकता। ऐसे लोग सदा रोगी ही रहते हैं। रोग मे विश्राम और रोग के पश्चात विश्राम—यह एक सुनहरी सिद्धान्त है जिसका सभी रोगियों को अनुकरण करना चाहिए। प्रत्येक व्यक्ति को अपने रोग और हालात के अनुसार यह निश्चय करना होगा कि उसे बीमारी से उठ कर कितनी देर आराम करना चाहिए। मेरे मतानुसार तो जितने दिन कोई व्यक्ति बीमार रहे, बीमारी से उठकर उसे उतने ही दिन विश्राम की आवश्यकता है।

मैंने कई लोगों को देखा है कि झुकाम लगा रहने पर भी दफ्तर चले जाते हैं। लेकिन मुझे यदि यह रोग हो जाए तो मैं दफ्तर से छुट्टी ले लूंगा। मुझे अपने आराम की ही नहीं दूसरों के आराम की भी आवश्यकता है। मुझे यह पसंद नहीं कि मेरे कारण कोई और इस रोग मे फंस जाए।

अच्छा रोगी कभी अपनी बीमारी को प्रत्येक उचित अनुचित हरकत का बहाना नहीं समझता। कुछ रोगियों को भ्रम हो जाता है कि उनके बीमार हो जाने के कारण उनकी असहनीय बातें भी सहन कर ली जाएंगी। सेवा करने वालों से वह ऐसी ऐसी मांग करेंगे जो सर्वथा अनुचित होंगी। जैसे, खाने के लिए वह चीज मांगेंगे जिससे डाक्टर ने रोक रखा हो। सेवा करने वाले से तनिक भी कोई ऐसी बात हो जाए जो उनकी इच्छा के विरुद्ध हो तो कठोर और कटु शब्दों को रोक नहीं सकेंगे। अपने आराम के मामले मे बड़े स्वार्थी बन जाएंगे परन्तु घर के अन्य लोगों की नींद या विश्राम का कोई ध्यान नहीं करेंगे।

किसी भी रोगी के लिए यह उचित नहीं कि बहुत विवश हुए बिना अपने आपको सेवा करने वालों पर छोड़ दे। उसे अपनी सहायता स्वयं करने का कथन नहीं भूलना चाहिए। दूसरा व्यक्ति यदि किसी समय सो रहा हो या पास न हो तो अपने आप उठ कर औषधि पी लेने मे या पाखाने चले जाने में कोई हरज नहीं। ऐसी ही अन्य आवश्यकताएं भी स्वयं ही पूरी की जा सकती हैं।

किसी व्यक्ति के बीमार होने के अर्थ यह नहीं कि उसकी मानव भावना भी बीमार हो गई है। इसलिए बीमार के मुख से कोई भी ऐसी बात नहीं निकलनी चाहिए जो शिष्टता और सहानुभूति से रहित हों। उसे कोई ऐसी हरकत नहीं करनी चाहिए जो दूसरों के मनमें घृणा उत्पन्न करे। कुछ लोग खांसने, थूकने और नाक आदि साफ करने में बड़ी बे-परवाही करते हैं। मिलने वालों या सेवा करने वालों का उचित आदर नहीं करते। सफाई का ध्यान नहीं रखते, आंखों में चिपड़ जमी रहती है, हजामत बढ़ जाती है और सिर के बाल बिखरे रहते है इत्यादि। अच्छा रोगी यथा सम्भव अपने आदर भाव स्वच्छता और शिष्टता को नहीं छोड़ेगा। सेवादारों को कम से कम कष्ट देगा। अपने शरीर की स्वच्छता का यथा सम्भव ध्यान रखेगा। अगर उसे स्नान करने से रोका गया है तो हाथ मुंह अवश्य धो लेगा। दिन में दो एक बार दर्पण भी देख लेगा और बालों में कंघी करेगा। प्रतिदिन दातुन करेगा। फर्श पर नहीं थूकेगा। ऋतु के अनुसार प्रतिदिन या दूसरे तीसरे दिन कपड़े भी बदलेगा। औषधि चाहे कितनी भी अस्वादिष्ट क्यों न हो ठीक समय पर बिना हठ किए पी लेगा।

यदि रोग छूत का है तो रोगी का कर्तव्य है कि दूसरों को उस रोग में फंसाने का कारण न बने। किसी के साथ

हाथ न मिलाए स्वयं किसी के समीप न बैठे और न किसी दूसरे को अपने समीप बैठने दे। किसी उत्सव, सभा या भोज में में शामिल न हो। अपने कपड़े, बिस्तर और बरतन अलग रखे। यदि कोई अन्य व्यक्ति छूतछात से बचने के लिए सावधान रहता है तो इसे अपना अपमान न समझे वरन् प्रसन्नतापूर्वक सहन करे।

अन्त में यह कहना है कि अच्छा रोगी ही नहीं अच्छा मनुष्य ही वह है जो अपने रोग से कोई पाठ ग्रहण करे। जिन भूलों के कारण वह बीमार हुआ था। उनकी पुनरावृति न करे। जिन डाक्टरों ने उसका इलाज किया उनका धन्यवाद करे। जिन सम्बन्धियों और प्रियजनो ने अपने आराम को छोड़ कर उसकी सेवा की उनका आभार न भूले और अपने मनमें निश्चय करे कि आवश्यकता पड़ने पर उनकी सेवा करने से हाथ न खींचेगा। रोग को प्रकृति की चेतावनी समझे। जीवन के जो दिन उसे मिल गए उनका पूरा लाभ उठाए और उन्हें अपने पुराने दोषों और त्रुटियों के सुधार का सुअवसर समझे।

बीमार पुरसी

बीमार पुरसी हमारे नैतिक और मानवीय कर्तव्यों में शामिल समझी जाती है। परन्तु बीमार पुरसी का ढग बहुत ही कम लोगों को आता होगा। इस अनुमान मे कोई अतिशयोक्ति नहीं कि ९५ प्रतिशत लोगों की बीमार पुरसी रोगियों के लिए शांति और सन्तोष की बजाए परेशानी और दुख का कारण बनती है। यह लोग यदि रोगियों को उनके हाल पर ही छोड़ दें तो अच्छा है। अपनी गलत सहानुभूति और मनोरंजन से उसके दुख में वृद्धि न करें।

हम लोगों मे जो भी कोई बीमार पुरसी के लिए जाता है वह अपना यह कर्तव्य समझता है कि रोगी को इलाज के सम्बन्ध में अवश्य कोई न कोई परामर्श दे। रोगी की इच्छा हो या न हो परन्तु वह उससे अवश्य ही रोग का पूरा हाल पूछेगा। इसके पश्चात अपने या किसी दूसरे व्यक्ति के अनुभव की बात बताकर उसे किसी विशेष औषधि के सेवन के लिए प्रेरित करेगा। कई लोग प्रेरणा को पर्याप्त नहीं समझते और अपनी बात के लिए हठ करने लगते हैं। यदि रोगी कोई कारण बताए तो वह उसके साथ बहस करके उसे मनाने का प्रयत्न करेंगे। कई लोग रोगी को हिदायत करेंगे कि अमुक डाक्टर या हकीम को छोड़कर अमुक से इलाज कराए। उसे कहा जाता है कि जिस डाक्टर से तुम इलाज करवा रहे हो उसे तो कुछ पता ही नहीं। दूसरा डाक्टर बहुत अच्छा है। उससे अमुक अमुक व्यक्ति ने इलाज कराया।

प्रत्येक रोगी की बीमार पुरसी करने वाले लग भग ऐसी ही बातें करते है। रोगी यदि अपनी राय और इरादे में स्थिर हो तो

कुछ नहीं विगड़ता परन्तु यदि तनिक भी दुर्वल प्रकृति वाला हो तो बेचारा परेशान होकर रह जाता है कि क्या करे और क्या न करे। किस की माने और किस की न माने। रोग से मुक्त होने के लिए अच्छा डाक्टर ही नहीं, अच्छा विश्वास भी चाहिए। परन्तु वह जिस भी डाक्टर से इलाज करवाने लगता है, उसीके वारे में उसका विश्वास कमजोर कर दिया जाता है। जो भी औषधि वह इस्तेमाल करने लगता है, उसीको निष्फल समझने पर वाधित कर दिया जाता है। यदि वह किसी व्यक्ति के परामर्श के अनुसार नहीं चलता तो वह रुष्ट हो जाता है। वह दो आपत्तियों के पंजों में फंस जाता है—एक ओर रोग और दूसरी ओर बीमार पुरसी। कई रोगी जो साधारण सी औषधि से ठीक हो सकते थे, इस दोहरी मुसीवत में फंस कर मुद्दतों एड़ियां रगड़ते देखे गए हैं।

बीमार पुरसी का वास्तविक उद्देश्य तो यह है कि हम रोगी के शुभ चिन्तक सिद्ध हों। उसे सांत्वना देकर चिन्ता से वचाएं और बीमारी से मुकाविला करने के योग्य वनाएं। उसकी कठिनाइयां दूर करें। आवश्यकता हो तो उसे नैतिक या आर्थिक सहायता दी जाए। यह उद्देश्य कदापि नहीं कि उसे एक औषधि से निराश करके दूसरी औषधि के सेवन के लिए प्रेरित किया जाए। डाक्टरों और हकीमों में उसका विश्वास कभी तोड़ा और कभी बनाया जाए। विशेष परिस्थिति या सम्बन्ध के विना इस प्रकार के परामर्श देना इलाज में अवांछित हस्तक्षेप के समान है और बहुत ही अनुचित है।

ऐसे लोगों की संख्या भी कम नहीं जो रोगी के पास जाकर ऐसी बातें शुरू कर देते हैं जिन से प्रकट हो कि जो रोग उसको लगा हुआ है वह बहुत खतरनाक है और उसकी दशा बहुत चिन्ता जनक है। असुकामुक व्यक्ति को भी यही रोग था। इतने दिनों तक विस्तर पर पड़ा रहा। इतना धन व्यय हुआ। और वह दूसरा

तो बच ही नहीं सका। इस प्रकार की बातें सुन सुन कर रोगी का दिल सहम जाता है। बीमारी का मुकाबिला करने की शक्ति कमजोर हो जाती है। कई अवस्थाओं में वह अपने जीवन से ही निराश हो जाता है। इस लिए रोगी को कभी कोई ऐसी कहानी नहीं सुनानी चाहिए। उसकी ढारस बंधाई जाए कि घबराने की कोई आवश्यकता नहीं, वह अवश्य ही स्वस्थ हो जाएगा। बीमार पुरसी करने वाले व्यक्ति को यहां तक सावधान रहना चाहिए कि उसके व्यवहार और मुख मुद्रा से भी यह प्रकट न हो कि रोगी की अवस्था खराब समझी जा रही है। रोगी के कमरे में बैठकर चुपके चुपके बातें करना भी अनुचित है। विस्मय की बात नहीं जो रोगी यह समझ बैठे कि बात चीत उसी के विषय में हो रही है। इससे उसके मनमे बहुत से भ्रम उत्पन्न हो सकते हैं। रोगी के सामने उसके रोग के बारे मे कोई बहस भी नहीं छेड़नी चाहिए। हर समय आशा वर्धक और मनोरंजक बातें करनी चाहिए।

कई लोग किसी रोगी का हाल पूछने जाते समय अपने बच्चों को भी साथ ले जाते हैं। बच्चे के दुर्बल और कोमल शरीर में रोग के कीटाणुओं का विरोध करने की शक्ति नहीं होती। वह शीघ्र ही रोग से प्रभावित हो जाता है। बच्चा कितना भी चीखे चिल्लाए उसे साथ रोगी के घर नहीं ले जाना चाहिए। यह सावधानी बड़े बड़े रोगों क्षय, सिल, सीतला और प्लेग आदि के लिए ही नहीं, खाँसी और जुकाम के रोगियों से भी बच्चों को दूर रखना चाहिए। बच्चे के लिए कोई भी रोग साधारण नहीं।

रोगी के पास बैठ कर धीरे धीरे बातें की जाएं। जोर जोर से बातें करना एक तो वैसे ही बुरा लगता है दूसरे इससे रोगी पर भी बुरा प्रभाव पड़ता है। डाक्टरों और वैज्ञानिकों ने खोज द्वारा प्रमाणित कर दिया है कि शोर गुल भले चगे व्यक्ति के स्वास्थ के लिए भी हानिकारक है। उन्होंने विभिन्न प्रयोगों द्वारा बताया है

कि इससे काम काज में रुकावट तो पड़ती ही है श्रवण शक्ति भी दुर्बल हो जाती है। मस्तिष्क के आंतरिक भाग मे रक्त अधिक एकत्र हो जाता है। पाचन क्रिया में विघ्न पड़ जाता है और थकन सी होने लगती है। जिस रोगी के कमरे में शोर अधिक रहता हो, उसे प्रायः सिर दर्द और थकन की शिकायत रहती है। यदि रोगी को वार्तालाप मे भाग लेने पर मजबूर किया जाए तो उसको और भी अधिक थकन होगी। इसलिए अच्छा यही है कि रोगी को चुप चाप आराम करने दिया जाए। उसके साथ अधिक बातें करके और उसे अनावश्यक प्रश्न पूछ कर तंग न किया जाए।

बीमारी के कारण लग भग प्रत्येक रोगी कुछ अधिक भावुक हो जाता है। बीमार पुरसी के समय उसके स्वभाव के इस परिवर्तन को भूलना नहीं चाहिए। रोगी की मानसिक और मनोवैज्ञानिक स्थिति को सामने रखना आवश्यक है। यह अनुमान लगा लेना चाहिए कि रोगी के पास कितना समय बैठना उचित है। उसकी इच्छा से अधिक समय लेना उसे बहुत बुरा लगेगा। किसी रोगी की अवस्था जितनी खराब हो उसके पास उतना ही कम बैठना चाहिए। रोगी के प्रति अपनी सहानुभूति या प्रेम के पदर्शन के लिए आवश्यक नहीं कि उसके पास घण्टों बैठा जाए। मन की शुभ कामनाएं दो चार मिनटों में ही उसको दी जा सकती हैं। वार्तालाप भी उतना ही होना चाहिए जितना वह सहन कर सके। कई रोगी बातें सुनने के इतने अभिलाषी नहीं होते जितने बातें करने के। ऐसी अवस्था में रोगी को बोलने का अवसर देना ही उचित है। शांति और एकाग्रता से उसकी बातें सुननी चाहिएं। यदि रोगी बाते सुनने का इच्छुक हो तो मंद स्वर मे नम्रता से बातें करो। दूसरे के घर के झगड़ों और व्यापारिक उलझनों का कोई जिक्र न किया जाए। तीसरे ऐसी बातें की जाएं जिनसे उसका मन बहले।

रोगी की सुविधा का पूरा पूरा ध्यान रखा जाए। उसकी शैय्या पर भूल कर भी न बैठना चाहिए। 'सेवा करने वालों का कर्तव्य है कि उसकी चारपाई के पास दो चार कुर्सियां या एक चारपाई बिछाए रखें। जो कोई जाए उसे रोगी के सामने कुर्सी या चारपाई पर ही बैठना चाहिए। रोगी के सिर की ओर पांव की ओर या पीठ की ओर किसी भी ऐसे स्थान पर नहीं बैठना चाहिए जहां वह आपका मुख न देख सके। रोगी यदि सोया हुआ हो तो सम्बन्ध कितना ही निकट और घनिष्ट क्यों न हो, उसे जगाना नहीं चाहिए। रोगी के कमरे में घूम फिर कर बातें करना या किसी चीज़ पर छड़ी को मारते रहना या चोरों के समान दबे पांव आना जाना उचित नहीं। कुछ रोगियों को इससे बड़ा कष्ट होता है।

बीमार पुरसी के सिलसिले में नैतिक ही नहीं चिकित्सा सम्बन्धी तकाज़े भी पूरे करने चाहिएं। इस सिलसिले मे प्रथम सावधानी यह बरतनी चाहिए कि रोगी के साथ हाथ न मिलाया जाए, न ही उसको चूमा जाए। रोगी यदि हस्पताल में है तो प्रबन्धकों से कोई विशेष सहायता न ली जाए। मिलने के लिये जो समय निश्चित हो, उसकी पाबंदी की जाए। रोगी को जो चीज़ें खाने की मनाही है वह चीज़ें चोरी से उसके पास न पहुंचाई जाएं। रोगी के पास से लौट कर हाथ मुंह अवश्य धो लेना चाहिए।

———

कौन किसी का

"कौन किसी का ?" में रवि बाबू ने एक विचित्र, किन्तु पवित्र और अनोखे विषय पर अपनी विचार धारा को अपनी लेखन शैली में समोया है।

"कौन किसी का ?" में भोले प्रेम—विचित्र त्याग और उच्चतम सद्चरित्रता को उजागर किया है।

"कौन किसी का ?" ही एक ऐसा उपन्यास है जिसमें प्रेम और त्याग के साथ-साथ बहुत ही ऊंचे चरित्र को सफलता से निभाया गया है। और यही इस उपन्यास की सब से बड़ी विशेषता है।

हर घर और लायेब्रेरी में रखने योग्य एक अनुपम पुस्तक—

मूल्य:—दो रुपये चार आने।

चाँद सितारे

"चांद सितारे" रविन्द्र नाथ ठाकुर की चुनी हुई कहानियों का संग्रह है। यदि हम कहे कि इस पुस्तक में टैगोर की सर्वश्रेष्ठ कहानियों को एकत्रित किया है तो इस का यह मतलब होगा कि हम उन की अन्य कहानियों और रचनाओं के महत्व को मानने से इन्कार करते हैं। परन्तु ऐसा कहना या समझना किसी भी साहित्य प्रेमी के लिये उचित नहीं।

हां इतना अवश्य है कि बहुत समय से हिन्दी कहानी साहित्य में श्री रवि बाबू की कहानियों के अच्छे तथा सुन्दर संग्रह का अभाव अनुभव किया जा रहा था।

"चान्द सितारे" नाम का कहानी संग्रह उसी अभाव की पूर्ति के विचार से प्रकाशित किया है। कौन सी कहानी "चांद" है और कौन सी "सितारा" यह आप ही बता सकेंगे हम इसका निर्णय करने मे असमर्थ है।

आज ही एक प्रति मंगाइये और "चांद" को ढूंढ़िये।

सजिल्द पुस्तक सुन्दर कवर। मूल्य:—दो रुपये आठ आने।

——❀❀——

"समाज का अत्याचार"

नहीं पढ़ा है तो अवश्य पढ़ें। इसमें आप देखैंगे:—

पवित्र प्रेम और त्याग का चित्र।

समाज की त्रुटियां—और उन त्रुटियों को छुपाने के विचार से किये अत्याचार—समाज के अत्याचार।

एक विवायिता, युवती की करुण कहानी जो चन्द झूठी, सच्ची बातों का शिकार बना कर घर से निकाल दी जाती है। विवश हो कर अपने सौन्दर्य, यौवन और पवित्रता का मोल करती है—ऊपर से हंसती है—परन्तु मन से रोती है।

आप का हृदय धड़केगा—मन से आहें निकलेंगी—केवल आहें—और बस।

सजिल्द पुस्तक, सुन्दर गेट अप,

मूल्य:—दो रुपये बारह आने।

——❀❀——

आँचल और आँसू

हिन्दी साहित्य में अपने ढंग की पहली पुस्तक

एक समय था, जब भारत में स्त्री शिक्षा को लज्जाजनक

समझा जाता था। जिस स्त्री को भी शिक्षा रूपी नाग डस लेता, उसे भले घर की बहू बेटियों में सम्मान की दृष्टि से नहीं देखा जाता था। धर्म और समाज के नाम पर पण्डित और मौलवी किसी भी स्त्री का शिक्षित होना—समाज का पतन समझते थे। परन्तु आज, शिक्षित भारतीय स्त्रियां पुरुषों के साथ २ देश और जाति की सेवा का प्रण लिए हुये हैं।

"आंचल और आंसू" की कहानियां भारत की दस प्रतिष्ठित लेखिकाओं की सर्वप्रिय कहानियां हैं।

"आंचल और आंसू" की कहानियों में हमारे समाज की कुरीतियों और कुप्रथाओं को नुकीले नश्तर से कुरेदा गया है।

"आंचल और आंसू" की काहानियों के साथ २ आप व्यथित होंगे, कभी हंसेंगे और कभी प्रेम मयी भावनाओं में वहते चले जायेंगे। मूल्य:—तीन रुपये आठ आने।
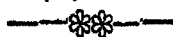
प्रेम पुजारिन

लेखक—पं० सुदर्शन

प्रेम पुजारिन पं० सुदर्शन का एक प्रसिद्ध मौलिक तथा सामाजिक उपन्यास है। प० सुदर्शन के वारे में कुछ कहना व्यर्थ होगा क्यों कि इनका नाम साहित्य संसार में अमर हो चुका है। उनकी रचना ऐसी सरल, सुमधुर और सद्भावों से भरी रहती है कि पढ़कर हृदय नाचने लगता है।

"प्रेम पूजारिन" भी पण्डितजी का एक प्रसिद्धतम उपन्यास है। आप इसे पढ़कर प्रसन्न होंगे।

"प्रेम पुजारिन" में लेखक ने हिन्दू समाज की बुराइयों का चित्रण ऐसे उत्तम ढंग से किया है कि प्रभाव हृदय पर अंकित हो जाता है।

"प्रेम पूजारिन" एक पवित्र उपन्यास जो निसंकोच घर में रखा जा सकता है। मूल्य:—दो रुपये चार आने।

—※※—

शाही लकड़हारा

लेखक—शिवव्रत लाल वर्म्मन

यदि आप भाग्य और प्रारब्ध की विचित्र गति देखना चाहते हैं तो शाही लकड़हारा पुस्तक पढ़िये। इस शिक्षाप्रद, सामाजिक और ऐतिहासिक उपन्यास में आप देखेंगे कि किस प्रकार एक सुन्दर, सुशील और सुशिक्षित राजकुमारी का व्याह एक लकड़हारे से कर दिया जाता है। लकड़हारा दिन भर जंगल से लकड़ियां काट कर अपना और अपनी पत्नी राजकुमारी का पेट पालता है। जीवन, संकटों और मुसीबतों का मजमूआ बन कर रह गया है, फिर भी राजकुमारी का अपने पति के प्रति अगाध प्रेम है। राजकुमारी पति सेवा में ही अपना सुख अनुभव करती है। वह दोनों जंगल में ही मंगल मनाते हुये जीवन व्यतीन करते हैं। परन्तु कुछ समय पश्चात फिर भाग्य की एक करवट लकड़हारे को राज सिंहासन पर बैठा देती है— आखिर यह सब क्यों हुआ, और किस प्रकार हुआ यह जानने के लिये आज ही इस विचित्र पुस्तक का अध्यन करें। इसे स्त्रि, पुरुप, लड़के, लड़कियाॅ सब पढ़ कर आनन्द उठा सकते हैं और शिक्षा प्राप्त कर सकते हैं।

मूल्य:—तीन रुपये आठ आने

—※※—